TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182095
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 P18P Accession No. P.G. H2064

Author पाण्डेय, रामप्रसाद. Compi.

Title प्रेम काव्य. 1956.

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रेम-काव्य

काव्य-पुस्तक का प्रकाशन ऐसा है
जैसे गुलाब के फूल की एक
पंखुड़ी उद्यान में नीचे गिर
पड़े और प्रतिध्वनि
की प्रतीक्षा
करे।

—डान मारक्विस

प्रेम-काव्य

हिन्दी महाकवियों की प्रेमविषयक कविताओं का अपूर्व संग्रह

★

संग्रहकर्त्ता—

रामप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

प्रकाशक—

सेठ कौशल किशोर बर्मन

सूर्य विकासी प्रकाशन

हाथरस यू० पी०

प्रथम संस्करण—३०००
स्वतन्त्रता दिवस १९५६

सर्वाधिकार स्वाधीन

मूल्य सजिल्द तीन रुपये

Post Graduate Library
of Arts & Commerce

के० किशोर बर्मन द्वारा
राष्ट्रीय एजुकेशनल प्रेस,
हाथरस, में मुद्रित

प्रकाशक का वक्तव्य

सत्साहित्य के विकास एवं प्रसार के ध्येय से हमने **सूर्य विकासी प्रकाशन** का आयोजन किया है। हिन्दी–अँगरेजी के यशस्वी लेखक प्रिंसिपल रामप्रसाद पाण्डेय के सहयोग से इस आयोजन का शुभारम्भ सफल होकर आपकी सेवा के लिये प्रस्तुत है।

विद्वान संग्रहकर्त्ता के साथ हमारा विश्वास है कि प्रेम जीवन का आद्योपान्त विषय है। व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सामाजिक, दोनों को सुखी और शान्त बनाने का यही एक अमोघ साधन है। काव्य–साहित्य का तो यह प्राण ही है। प्रेम–भाव के अभ्यास से मानव अपने ठीक रूप को जानता है और आत्मिक एकता का अनुभव करता है। प्रेम–साहित्य विश्व–शान्ति का पोषक है। आधुनिक जगत् की अशान्ति का प्रधान कारण प्रेम-साहित्य की उपेक्षा है। इस विषय को उचित स्थान देने की आज जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कदाचित् कभी नहीं थी। विज्ञान के अनेक विनाशी अनुसंधानो और आविष्कारों ने मानव को भयभीत कर दिया है। इस भय को दूर करने के हेतु हमको मानव जीवन का मूल्य करना होगा, जिसका अनुमान हम उसकी प्रेमशक्ति से ही लगा सकते हैं।

जैसा पाण्डेय जी ने भूमिका–भाग में कहा है, हिन्दी–काव्य में प्रेम की अनुपम महिमा दिखाई गयी है। इस विषय में यह विश्व–साहित्य का सम्राट् है। हिन्दू समाज की अमिट शक्ति

तथा सनातन शांति-प्रियता का यह एक प्रधान कारण है कि संस्कृत काव्य से लेकर इसके प्रधान उत्तराधिकारी हिन्दी में प्रेम का अधिकाधिक कीर्त्तन होता आ रहा है। हिन्दी के बढ़ते हुए महत्व एवं विस्तार में इस विषय का प्रचार राष्ट्र की महत्तम सेवा है।

इस संग्रह में प्रधान रूप से सूरदास से लेकर भारतेन्दु की रचनाओं का समावेश है। वर्त्तमान कविताओं का ऐसा अन्य संग्रह भविष्य में करने का विचार है। परन्तु हमारे आधुनिक कवियों की प्रेम-विषयक रचनायें इतनी प्रचुर और प्रगल्भ हैं कि उनकी थोड़े काल के लिये भी उपेक्षा करना उनकी अवज्ञा होती। इस विचार से प्रेरित होकर, कवियों के सम्मान की दृष्टि से, 'नवीन नमूने' स्तंभ में सभी की रचनाओं के छोटे-छोटे अंश दे दिये गये हैं। ये अंश ऐसे हैं जो प्रायः प्रत्येक समीक्षा में उदाहरण के हेतु उद्धृत किये जाते हैं। तथापि हम प्रधान रूप से सभी रस-सिद्ध-कवीश्वरों के और सामान्य रूप से उनके समालोचकों के आभारी हैं, जिनसे प्रस्तुत संग्रह पूरा किया गया है।

इसका संपादन अत्यन्त सुरुचिपूर्ण शैली से हुआ है। साहित्य-प्रेमी पाठकों का मनोरंजन एवं एक कल्याणकारी विषय का प्रचार ही हमारा परम लाभ है। हमारा विश्वास है कि इस संग्रह को प्रेमी पाठक पसन्द करेंगे।

तिलक शताब्दी,
१९५६

कौशल किशोर बर्मन

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ संख्या
१	हिन्दी कवियों की प्रेम-कविता ...	१
२	सूर-खंड	१७
३	तुलसी-खंड	४४
४	रसखानि-खंड	४६
५	आलमशेख-खंड	४६
६	केशव-खंड	५३
७	पद्माकर-खंड	५६
८	दास-खंड	६०
९	मतिराम-खंड	६२
१०	देव-खंड	७३
११	बिहारी-खंड	७६
१२	भारतेन्दु-खंड	८५

Hindi ... LIBRARY ... UNIVERSITY ... No.

विषय			पृष्ठ संख्या
१३ नवीन-नमूने :-			
	मैथिलीशरण गुप्त	... ...	६०
	सुमित्रानंदन पंत	... ...	६३
	महादेवी वर्मा	... ...	६६
	ठा० गोपालशरण सिंह	... ...	१०१
	हरिऔध	... ...	१०५
	रत्नाकर	... ...	१०८
	रामकुमार वर्मा	... ...	११३
	अनूप शर्मा	... ...	११५
	तारा पाण्डेय	... ..	११७
	'बच्चन'	... ...	११८
	बालकृष्ण राव	... ...	१२०
	सुन्दर कुमारी	... ...	१२१
	भगवती प्रसाद वाजपेयी	...	१२२
	केसरी	... ...	१२७
	लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निशंक'	...	१२८
	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	...	१२६
	श्यामनारायण पाण्डेय	... ...	१३१
	श्री अञ्चल	... ...	१३३
	श्री अज्ञेय	... ...	१३४
१४ कवि-परिचय			१३५-१५२

प्रेम-काव्य

हिन्दी कवियों की प्रेम-कविता

अंग्रेज़ों को अपने साम्राज्य की विशालता तथा शक्तिशालिता पर गर्व है। किन्तु उससे भी अधिक गर्व है उन्हें अपने काव्य का। अंग्रेज़ी कविता सचमुच अतुल गर्व की वस्तु है। उसकी सीमा विशद है और प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उसमें विशेष कर एक शेक्सपियर ऐसा रत्न है जो जैसे अनमोल है वैसे ही अप्रतिम है। सभी अंग्रेज़ी कवियों को मिलाकर जीवन का कोई ऐसा अङ्ग नहीं बच रहा है जिस पर प्रचुर तथा सुचारु कविता नहीं हुई है।

किन्तु प्रस्तुत लेखक की दृष्टि में प्रेम एक ऐसा विषय है जिस पर जैसी मार्मिक तथा सारगर्भित उक्तियाँ हिन्दी कविता में हैं वैसी अंग्रेज़ी कविता में नहीं है। प्रेम पर अंग्रेज़ों ने लिखा है और खूब लिखा है, किन्तु प्रेम के तत्व और स्वरूप पर हिन्दी कवियों ने जो प्रकाश डाला है वह भविष्य में अभी कुछ काल तक अंग्रेज़ी कवियों का आदर्श रहेगा। नीचे की कुछ पंक्तियों में हिन्दी कवियों की प्रेम-कविता का दिग्दर्शन किया जायगा और उससे, आशा है, ऊपर कही हुई बात की पुष्टि होगी।

सबसे पहले, प्रस्तुत विषय की सीमा के भीतर, कालक्रम की दृष्टि से महाकवि कबीर का उल्लेख उचित होगा। इन्होंने प्रेम पर बहुत नहीं लिखा है। किन्तु जो थोड़े से दोहे रचे है वे प्रत्येक अमूल्य हैं। प्रेम के मूल में त्याग तथा आत्मविस्मृति हैं, इस बात को कबीर ने इस प्रकार दर्शाया है :—

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी, तामैं दो न समाहिं ॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान ।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥
जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन माहिं ॥
प्रीतम को पतियां लिखूं, जो कहुं होय विदेस ।
तन में मन में नैन में, ताको कहा संदेस ॥

एक और दोहे में प्रेम की रासायनिक क्रिया देखिये :—

सबै रसायन मैं पिया, प्रेम समान न कोय ।
रति एक तनमें संचरै, सब तन कंचन होय ॥

उपर्युक्त लाइनें मधुर-कोमल-कांत-पदावली नहीं हैं, किन्तु रमणीयार्थ प्रतिपादक हैं, जीवन के प्राण प्रेम की व्याख्या हैं, और इसलिए उत्तम काव्य है ।

दूसरे हम सूर को लेंगे । जिस सूरदास की प्रेमकविता के विवेचन में बहुत कुछ कहा जा सकता है उसका यहां अल्पांशिक उल्लेख करना दुस्साहस है । किन्तु यहाँ संकुचित सीमा की विवशता है । दो-तीन छन्द से अधिक न दिया जा सकेगा ।

छोटेपन में ही राधा-माधव में स्नेह हो गया । वे एक दूसरे की ओर हठात् आकर्षित रहते, किन्तु अभी इतने भोले थे कि भीतर यह क्या हो रहा है, इसकी समझ किसी में, विशेषतः राधा में, न थी । कृष्ण बार-बार राधिका और राधिका बार-बार कृष्ण के घर जाया करती । राधा के आ जाने पर नटवर घर की सुध-बुध भूल जाते और उसी में लवलीन हो जाते । एक दिन, इस गति से खीझ कर, यशोदा ने कहा :—

बार-बार तू ह्याँ जनि आवै।
मैं कहा करौं सुतहि नहिं,
बरजति, घरते मोहिं बुलावै।
मोसों कहत तोहि देखे बिनु,
रहत न मेरो प्रान।
छोह लगत मोकों सुनि बानी,
महरि, तिहारी आन।

"छोह लगत मोको सुनि बानी" प्रेम प्रस्फुरण का अनुपम वर्णन है। छोटे-छोटे सीधे-सादे शब्दों में सूर ने गजब की कविता की है। यह रचना कभी पुरानी नहीं होने की और न इसके लिये देश-या जाति-बंधन हो सकता है। यह विश्व-साहित्य है। मनुष्य मात्र का हृदय इससे सदा स्पंदित हुआ करेगा। इस पद में सहज भोलापन का रस है, यह न कह कर यदि कहा जाय कि सहज भोलापन के रस में स्वयं यह पद-प्याला नीचे-ऊपर आता जाता है तो अधिक सत्य का निर्वाह होगा।

एक दूसरा पद उद्धृत करते हैं जिसमें प्रेमिका की परवशता बड़े ही सुन्दर ढंग से दिखायी गई है।

नैना नाहिन कछू बिचारत।
सनमुख समर करत मोहन सों
जद्यपि हैं हठि हारत।
अवलोकत अलसात नवल छवि
अमित तोष अति आरत।
तमकि तमकि तरकत मृगपति ज्यों
घूंघट पटहि बिदारत।
बुधि बल कुल अभिमान रोष रस
जोवत भवहि निवारत।

निदरे व्यूह समूह स्याम अँग
पेखि पलक नहिं पारत ।
अमित सुभट सकुचत साहस कर
पुनि पुनि सुखहि सम्हारत ।
सूर स्वरूप-मगन झुकि व्याकुल
टरत न इकटक टारत ॥

बेचारी नायिका दृगों को अपने वश में नहीं रख पाती है। वे विद्रोही हो गए हैं। किन्तु यह परवशता दृगों ही तक नहीं है। हृदय का भी हाल सुनिए।

स्याम करत हैं मन की चोरी।
कैसे मिलत आनि पहिले ही
कहि कहि बतियां भोरी ।
लोकलाज की कानि गमाई
फिरति गुड़ी बस डोरी ।
ऐसे ढंग स्याम अब सीखे
चोर भयो चितकोरी ॥

\+ +

मन मेरो हरि साथ गयोरी ।
द्वारे आय स्यामघन सजनी
हँसि मो तन ते संग लयोरी ॥

\+ + + +

कवि ने प्रेम तरंग को अत्यन्त उच्छृङ्खल कर दिया है। उसके लिये अन्य कोई मर्यादा नहीं है, केवल प्रेम ही जीवन का सत्य है, और उसी की मर्यादा से जन मर्यादित होता है, शेष सभी आचार-विचार लोक के ढकोसले हैं। उसकी स्वछन्द लीला देखिये :—

\+ + + +

बैठी रही कुंवरि राधा
हरि अंखियाँ मूंदी आय।

+ + + +

लहौं दान दृगन को तुम सों।
मत्त गयंद हंस तुम सोहैं
कहा दुरावति मोसों।
केहरि कनक कलस अमृत के
कैसे दुरैं दुरावति।
विद्रुम हेम वज्र के किनुका
काहे न हमहिं सुनावति।

× + + +

दान दिए बिनु जान न पैहो,
कैसे होत निबाहू॥

+ + + +

जमुना जल विरहत ब्रजनारी
नट ठाढ़े देखत नंद नन्दन,
मधुर मुरलि करधारी।

+ + + +

राधा जल विहरति सखियन संग।
ग्रीव प्रयंत नीर में ठाढ़ी,
छिरकति जल अपने अपने रंग।
मुखभरि नीर परस्पर डारति,
शोभा अति ही अनूप बढ़ी तब।
मनहु चन्द्रगन सुधा गंडुकनि,
डारत हैं आनन्द भरे
आई निकसि जानु कटिलौं सब

अंजुरिन तें जल डारत ।
मानहु सूर कनक वल्ली जुरि,
अमृत पवन मिस झारत ।।

\+ + + +

अंचल चंचल श्याम गह्यो ।
लै गए सुभग पुलिन जमुना के,
अंग अंग भेष लह्यो ।।

\+ + + +

परस्पर श्याम ब्रजबाम सोहैं ।

\+ + + +

इस विहार तथा सुखसागर में कलोलें करने पर सुरललनाएं बारंबार पछता रही हैं कि वे गोपी न हुईं । "हमको विधि ब्रजबधू न कीन्हीं, कहा अमरपुर वास भये ?" प्रेम-लीला की यह महत्ता है । सुरपुरवास सभी जीवों के सुख की चरन सीमा है । किन्तु लौकिक प्रेम-लीला के सामने वह भी फीका पड़ गया, हेय हो गया ।

अब मर्यादा-भक्त तुलसीदास के प्रेम वर्णन की कला को देखिए । इन्होंने प्रेम का बहुत वर्णन नहीं किया है । किन्तु यत्र-तत्र जो कुछ किया है वह अत्यन्त मधुर तथा सुन्दर है ।

तासु वचन अति सियहि सुहाने ।
दरस लागि लोचन अकुलाने ।।
चली अग्रकरि प्रिय सखि सोई ।
प्रीति पुरातन लखै न कोई ।।

\+ + + +

चकित विलोकति सकल दिसि,
जनु सिसु मृगी सभीत ।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भये नयन चकोरा॥
पूजन गौरि सखी लै आई।
करति प्रकास फिरति फुलवाई॥
जासु विलोकि अलौकिक सोभा।
सहज पुनीत मोर मन छोभा॥

\+ \+ \+ \+

करत बतकही अनुज सन,
मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छबि,
करत मधुप इव पान॥

\+ \+ \+ \+

चितवत चकित चहूँदिसि सीता।
कहँ गये नृप किशोर मन चीता॥
जहँ विलोक मृग सावक नैनी।
जनु तहँ बरिस कमल सित सेनी॥
देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

जिस सीय स्वयंबर आख्यान से ये पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं, वह भाव तथा भाषा की सुचारुता में हिन्दी काव्य भर में अप्रतिम और अद्वितीय है। लोक तथा समाज की मर्यादा को रक्षा करते हुए पुनीत प्रेम का परम सुन्दर प्रस्फुटन जो कवि ने

अपनी अत्यन्त रसीली तथा सजीली भाषा में दर्शाया है, उसे 'समझत बनै, बरनि नहिं जाई।' यदि और कुछ न लिखकर केवल यही तुलसीदास छोड़ गए होते तब भी वे अमर-कविता के कर्त्ता महाकवि माने जाते।

कवि ने राम का जो संदेश हनुमान द्वारा सीता के पास भिजवाया है वह भी अपनी कोटिका अनूठा काव्यांश है।

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा,
जानत प्रिया एकमन मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं,
जानु प्रीति रस एतनेहि मांहीं।

अधिक क्या कहा जाय, यह गागर में सागर भर दिया गया है। अन्य वर्णनों में सुख है तो इसमें शांति है।

तुलसीदास ने श्रीकृष्णगीतावली में गोपी-कृष्ण विषयक भी कुछ अनूठे पद कहे हैं। उनमें से केवल एक यहां दिया जाता है, जो अत्यन्त रसीला है।

ऊधो, या ब्रज की दसा बिचारो।
ता पीछे यह सिद्ध आपनी
जोग कथा विस्तारो।
जो कारन पठये तुव माधव
सो सोचहुँ मन माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ
जानत हौ किधौं नाहीं।
परम चतुर निज दास स्याम के
संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन को
फिरि फिरि कहा कहत हौ।

वह अति ललित मनोहर आनन
कौने जतन विसारौं।
जोग जुगति अरु मुकति विविधि विधि
वा मुरली पर वारौं॥
जेहि उर बसत स्यामसुन्दर धन
तेहि निगुन कस आवै।
तुलसीदास सो भजन बहाओ
जाहि दूसरो भावै॥

तुलसीदासजी के ऊपर दिये गए वर्णनों में कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो एकबार देख ली जाने पर मनोलोक को छोड़ती ही नहीं नयनों में सदा नाचा करती हैं।

'अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा।
सियमुख ससिभये नयन चकोरा'॥
'करति प्रकास फिरत फुलवाई'।
'करत बतकही अनुज सन,
मन सियरूप लुभान'
'जहँ बिलोकि मृग सावक नैनी।
जनु तहँ बरिस कमल सित सेनी'॥

तथा, 'वह अति ललित मनोहर आनन कवने जतन विसारौं' को एक बार देखकर कौन भूल सकता है? ये मानसिक वेग की तरह हमको अभिभूत कर लेती हैं, हृदय जगत में ज्योति फैला देती हैं।

अलंकृतकाल के प्रायः सभी कवियों ने प्रेम का सुन्दर वर्णन किया है। किन्तु उन सब में देव, बिहारी तथा मतिराम श्रेष्ठ हैं। ये तीनों ही महाकवि हुए हैं। इनकी अमर कविता का प्रेमामृत ही प्रधान विषय है। प्रेम का सांगोपांग तथा सरल

वर्णन जैसा इनका है वैसा, सूर को छोड़कर, अन्य किसी कवि का नहीं मिलता है।

श्रद्धेय मिश्रबन्धुओं ने देव के विषय में बहुत ठीक कहा है कि "इस कविरत्न ने प्रेम के तत्त्व, गंभीरता, महत्त्व, निःस्वार्थ भाव, तल्लीनता, चाह आदि के परमोत्कृष्ट चित्र खींचे हैं। प्रेमीजन प्रेम-पात्र के लिए समस्त संसार को कैसे और क्यों तृणवत् छोड़ देते हैं, इसका प्रत्यक्ष वर्णन यहाँ प्रस्तुत है। देव ने विषयानन्द को तुच्छ कह कर ऊंचे प्रेम का वर्णन किया है।" इस कथन की पुष्टि में अगणित परमोज्ज्वल छन्दरत्न दिए जा सकते हैं। यहाँ दो-तीन पर्याप्त होंगे।

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
　　कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो नरलोक परलोक बरलोकन मैं,
　　लीन्हीं मैं अलीक लोक लीकन ते न्यारी हौं॥
तनजाउ मनजाउ देव गुरुजन जाउ,
　　प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
बृन्दावनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
　　पीतपटवारी वहि मूरत पै वारी हौं॥
आंखिन आंखि लगाए रहैं,
　　सुनिए धुनि कानन को सुखकारी।
देव रही हिय मैं घरुकै,
　　न रुकै निसरै बिसरै न बिसारी॥
फूल म वासु ज्यों मूल सुवासु की,
　　है फलि फूलि रही फुलवारी।
प्यारी उन्यारी हिये भरि पूरि,
　　सुदूरि न जीवन मूरि हमारी॥
देव न देखति हौं दुति दूसरि,

देखे हैं जादिन ते ब्रज भूप मैं।
पूरि रही री वही धुनि काननि,
आनन आनन ओप अनूप मैं।
ये अंखियाँ सखियां न हमारी,
जो जाय मिलीं जलबुन्द ज्यों कूप मैं।
कोटि उपाइन पाइए फेरि,
समाइ गईं रंगराई के रूप मैं॥

× × ×

रावरो रूप रह्यो भरि नैनन,
बैननि के रस स श्रुति सानों।
गात मैं देखत गात तुम्हारोई,
बात तुम्हारिए बात बखानों।
ऊधो, हहा हरि सों कहियो,
तुमहौ न इहां यह हौं नहि मानों।
या तन ने बिछुरे तो कहा,
मनते अनते जु बसौ तब जानों॥

देव के प्रेम वर्णन में कबीर का त्याग है, सूर का अनुराग है, तुलसी की पुनीतता है, और एक विचित्र स्वारस्य है जो, उस प्राचुर्य में, केवल उसी में है, अन्य किसी में नहीं है।

बिहारी के वर्णन में विषयानन्द कुछ अधिक हैं, इसलिये उन्हें शृङ्गारी कहा करते हैं। शृङ्गारमय प्रेम उनकी कविता में चरम सीमा को प्राप्त हो गया है। बिषय सुख उतना और किसी की कविता नहीं देती है। कदाचित् यही कारण है कि बिहारी के उपासक नव-लेखकों में कम होते जा रहे हैं। जिसकी कविता कामिनी समष्टिरूप से केवल विषय सुखों ही में अवलिप्त रहती है उसे विश्वकबि नहीं कह सकते हैं, कला का नैपुण्य उसमें अनुपम क्यों न हो।

तथापि, वैसी रुचि रखने वालों के लिए बिहारी बहार की वस्तु हैं और जब तक हम मोह में फंसे रहेंगे तब तक उनकी कविता अवश्य ही मोहिनी रहेगी। नीचे दिये हुए थोड़े से दोहों की भाव माधुरी पर कौन नहीं मुग्ध होगा,

बतरस लालच लालकी, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हसै, दैन कहै नटि जाय॥
छला छबीले लालको, नवल नेह लहि नारि।
चाहति चूमति लायउर, पहिरति धरति उतारि॥
राति द्यौस हौसे रहै, मान न ठिक ठहराय।
जेतो औगुन ढूंढ़िये, गुनै हाथ परि जाय॥
अपनी गरजन बोलियत, कहा निहोरो तोहिं।
तू प्यारो मो जीय को, मोजिय प्यारो मोहिं॥
इन अंखियां दुखियान को, सुख सिरज्योई नाहिं।
देखे बनै न देखिबो, बिनु देखे अकुलाहिं॥
पलनु प्रगटि वरनीनु बढ़ि,
नहिं कपोल ठहरात।
असुवा परि छयियाँ छिनकु,
छन छनाय छपि जात॥

सुकवि मतिराम की प्रेम-कविता भी अधिकतर विषय-वासनायुक्त है। किन्तु उनके कुछ पद ऐसे है जो विशुद्ध प्रेम तथा आत्मविस्मृति से ओतप्रोत हैं और देवकी उत्तम रचना जैसे दीखते हैं।

क्यों इन आंखिन सो निरसंक ह्वै
मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारे कलंक लगै,
इहि ग्राम बसे कहु कैसेकु जीजै॥
होत रहे मन में मतिराम,

कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजें।
ह्वै बनमाल हिये लगिए,
अरु ह्वै मुरली अधरा रस पीजै॥

\+ + + +

निसिदिन स्रौनन पियूषसों पियत रहै,
छाय रह्यो नाद मुरली के सुर ग्राम को।
तरनि तनूजा तीर बन कुञ्ज वीथिन मैं,
जहां तहाँ देखती हैं रूप छवि धाम को।
कवि मतिराम होत हाँतो ना हिये ते नेक,
सुख प्रेम गात को परस अभिराम को।
ऊधो तुम कहत वियोग तजि योग करौ,
जोग तब करें जो वियोग होय श्याम को॥

ये दोनों ही छन्द उत्तम काव्य है। पहले में अतीव सुन्दर ढंग के सतीत्व तथा पर-प्रेम का सामंजस्य कराया गया है, तो दूसरे में द्वैत की अद्वैत में परिसमाप्ति दिखाई गई है। ये बड़ी उन्नत प्रतिभा की उपज हैं।

प्रेम-कविता विषयक कोई भी निबन्ध, बड़ा हो या छोटा, पूरा नहीं हो सकता, जब तक भारतेन्दुजी का उल्लेख न हो। यों तो ये बहुमुखी प्रतिभा वाले कवि तथा लेखक थे और अनेक विषयों पर गद्य तथा पद्यमय रचना की। किन्तु उनका सबसे अधिक महत्त्व प्रेम-कविता पर आस्पदीभूत है। चन्द्रावली नाटिका नाटक की दृष्टि से दोषों से रिक्त नहीं है, किन्तु काव्य की दृष्टि से विश्ववन्द्य रचना है। प्रेम के विशुद्ध स्वरूप का जो निपुण निरूपण उसमें है, उसकी उपमा कहीं ढूढ़े न मिलेगी। जिसने चन्द्रावली नहीं पढ़ी, उसकी प्रेम-कविता की जानकारी पूरी नहीं है। वह एक दिव्य काव्य है। दृष्टान्त के लिये कुछ

छन्द यहाँ दिये जाते हैं। कृष्ण के वियोग में चन्द्रावली विलाप कर रही है और अपनी आंखों को कोस रही है,

धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सौ पूछि कै सो मोहिं भाखौ।
त्यों सब लाज तजी छिन मैं,
केहिके कहे एतौ कियौ अभिलाखौ॥
काज बिगारि सबै अपनो,
हरिचन्दजू धीरज क्यों नहिं राखौ।
क्यों अब रोइकै प्रान तजौ,
अपुने किएको फल क्यों नहिं चाखौ॥

× × × ×

हा!
इन दुखियान को न सुख सपनेहू मिल्यौ,
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलांयगी।
प्यारे हरिचन्दजी की बीती जानि औध जो पै,
जै हैं प्रान तऊ ये तो साथ न समांयगी।
देखौ एक बारहू न नैन भरि तोहिं यातें,
जौन जौन लोक जै हैं तहीं पछितायंगी।
बिना प्रानप्यारे भए दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायंगी॥

× × × ×

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन बिचार लयो।
नहिं जानि परे हरिचन्द कछू,
बिधिने हम सों हठ कौन ठयो।
मिलि आजहु की गइ हाय बिहाय,

पिया बिनु कैसे न जीव गयो।
हत भागिनि आंखिन के नितके,
दुख देखिबेको फिर भोर भयो॥

एक और छन्द दिया जाता है जिसमें प्रेमकी साधना से पूर्ण अद्वैत की अनुभूति का वर्णन है। हिन्दी अङ्गरेज़ी किसी कविने, मेरे जान, ऐसा सफल वर्णन नहीं किया है।

वियोगावस्था में ही एक सखी चन्दावली को पकड़ कर प्रश्न पूछने लगी, तथा वह उत्तर देने लगी,

कहां चली सजिकै? पियारे सो मिलन काज,
कहां तू खड़ी है? प्यारे ही को यह धाम है।
कहा कहै मुखसों? पियारे प्रान प्यारे,
कहा काज है? पियारे सों मिलन मोहि काम है॥
मैं हूँ कौन बोल तौ? हमारे प्रान प्यारे हौ न?
तू है कौन? प्रीतम पियारो मेरो नाम है।
पूछति सखी कै एकै उत्तर बतावति,
जकी सी एक रूप आज श्यामा भई श्याम है॥

इन महाकवि के अनन्तर के कवि हमारे समसामयिक कवि हैं। इनमें भी अनेकों ने प्रेम को लेकर कुछ अच्छी रचनायें की हैं, जिनमें हरिऔध, रत्नाकर, पंत तथा प्रसाद उल्लेखनीय है। हरिऔध तथा रत्नाकर का प्रेम प्राचीन प्रणाली का तथा अन्य कवियों का छायामार्ग का अनुसरण करता है। ये नव्य शैली वाले काल्पनिक तथा भावनामय प्रेम का अधिक चित्र खींचते हैं। इनकीरचनाओं में प्रेम का मूर्त्त रूप नहीं मिलता है जो प्राचीन कवियों की विशेषता है।

प्रस्तुत संग्रह में केवल भारतेन्दु तक से संकलन किया गया

है। अतः भूमिका में समीक्षा भी उन्हीं पर समाप्त की जाती है।

जिस विषय को लेकर यह संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है उसके सम्बन्ध में दो शब्द लिख देना उचित एवम् आवश्यक है। प्राचीन पदावली के अनुसार, शृंगार शब्द नारी के रूप-गुण तथा नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण-अनुराग को व्यक्त करता है। कनिष्ठों के प्रति दिखाये गये स्नेह को वात्सल्य कहते हैं। ज्येष्ठ श्रेष्ठों के प्रति जो अनुराग उदित होता है उसे श्रद्धा भक्ति नामसे सम्बोधित किया जाता है। परन्तु हमने इन सभी भावों का समावेश प्रेम शब्द में किया है। सूक्ष्म दृष्टि से यह उदार तथा व्यापक पद है और प्रयोग में सुन्दर एवं समीचीन लगता है। आशा है सहृदय पाठक इस संग्रह को मनोरंजक पायेंगे।

रामप्रसाद पाण्डेय

प्रेम-काव्य

सूर-खंड

खेलन हरि निकसे ब्रज-खोरी।

कटि कछनी पीताम्बर काछे हाथ लिये भंवरा चक डोरी।
मोर मुकुट कुंडल स्रवनन पर दसन दमक दामिनि छबिथोरी॥
गए स्याम रबितनया के तट, अंग लसति चन्दन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी॥
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रूचिर झकझोरी।
सङ्ग लरिकिनी चलीं इत आवति दिन थोरी अति छबिजनगोरी॥
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ढगोरी॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी?

कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे को हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पोरी।
स्रवनन सुनति रहति नन्दठोटा करत रहत माखन दधि चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ सङ्ग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी॥

प्रथम सनेह दुहुन मन जान्यो।

सैन सैन कीनी सब बातैं गुप्त प्रेम सिसुता प्रगटान्यो॥
खेलन कबहुँ हमारे आवहु नन्दसदन ब्रज गाँव।
द्वारे आय टेरि मोहिं लीजो कान्हा मेरो नाँव॥
जौ कहिये धर दूरि तुम्हारो बोलत सुनिये टेर।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की प्रात साँझ यक फेर॥

सूधी निपट देखियत तुमको तातें करियत साथ।
सूर स्याम नागर उत नागरि राधा दोउ मिलि गाथ॥

खेलन के मिस कुंवरि राधिका नन्दमहर के आई हो।

सकुच सहित मधुरे करि बोली 'घर हौ कुँवर कन्हाई हो'॥
सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई हो।
माता सों कछु करत कलह हरि सो डारयो बिसराई हो॥
'मैया री तू इनको चीन्हति' बारंबार बताई हो।
जमुना तीर काल्हि मैं बाँह पकरि लै आई हो'॥
आवति यहां तोहिं सुकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई हो।
सूर स्याम ऐसे गुन-आगर नागरि बहुत रिझाई हो॥

देखि महरि मन ही जु सिहानी।

बोलि लई बूझति नँदरानी कुंवरि कहति मधुरे मधुबानी॥
'ब्रज में तोहिं कहूँ नहिं देखी, कौन गाँउ है तेरो?।
भली करी कान्हहि गहि ल्याई भूल्यौ तो सुत मेरो'॥
नयन बिलाल बदन अति सुन्दर देखत नीकी छोटी।
सूर महरि सविता सों बिनवति भली स्याम की जोटी॥

'नामु कहा है तेरो प्यारी?

बेटी कौन महर की है तू? कहि सु कौन तेरी महतारी।
धन्य कोख जिन तुमको राख्यो, धन्य घरी जिहितू अवतारी॥
धन्य पिता, माता धनि तेरी' छबि निरखति हरि की महतारी।
'मैं बेटी बृषभानु महर की, मैया तुमको जानति।
जमुना-तट बहुबार मिलन भो तुम नाहिन पहिचाँनति'॥
ऐसी कहि वाको मैं जानति वै तो बड़ी ठठोल।
महर बड़ो लंगर सब दिन को हँसत कहत मुख बोल॥
राधा बोलि उठी "बाबा कछु तुमसों ठीठ्यो कीनी"।

"ऐसे समरथ कब मैं देखे" हंसि प्यारी उर लीनी ॥
महरि कुँवरि सों यह कहि भाषति आउ करौं तेरी चोरी ।
सूरदास हरषी नन्दरानी कहति महरि हम जोरी ॥

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति ।

बड़े बार सीवंत सीस के प्रेम सहित लै लै निखारति ॥
माँग पारि बेनीहि सँवारति गूंथी सुन्दर भांति ।
गोरे भाल बिन्दु बदन मनु इन्दु प्रात-रवि कांति ॥
सारी चीर नई फरिया लै अपने हाथ बनाई ।
अंचल सों मुख पोछि अङ्ग सब आपुहि लै फहिराई ॥
तिल-चांवरी बतासे मेवा दियो कुँवर के गोद ।
सूरस्याम राधा तन चितवत जसुमति मन मन मोद ॥

खेलौ जाय स्याम सङ्ग राधा ।

यह सुनि कुँवरि हरष मन कीनों मिटी जु अन्तर बाधा ॥
जननी निरखि चकित भई ठाढ़ी दंपति रूप अगाधा ।
देखति भाव दुहुँन को सोई जो चित करि अबरधा ॥
सङ्ग खेलत दोउ झगरन लागे सोभा बढ़ी अबाधा ।
मनहु तड़ित घन इन्दु तरनि है बाल करत रस साधा ॥
निरखत विधि भ्रम भूलि परयो तब मन मन करत समाधा ।
सूरदास प्रभु और रच्यौ विधि सोच भयो तन दाधा ॥

बूझति जननि 'हुती कहँ प्यारी ?

'किन तेरे भाल तिलक रचि दीनों, किहि कचगूँथि मांग सिरपारी'
खेलत रही नन्द के आंगन जसुमति कही कुँवरि इतआरी ।
तिल चांवरी गोद करि दीनी, फरिया दई फारि नव सारी ॥
मेरो नाउँ बूझि, बाबा को तेरो बूझि दई हँसि गारी ।
मो तन चितै, चितै ढोटा तन कछु सचिता सों गोद पसारी ॥

यह सुनिकै वृषभानु मुदित चित हँसि हँसि बूझत बात दुलारी ।
सूर सुनत रससिंधु बढ्यो अति दंपति मन में यहै बिचारी ।।

'मेरे आगे महरि जसोदा, मैयारी ! तोहिंगारी दीन्ही ।
वाकी बात सबै मैं जानति, वै जैसी तैसी मैं चीन्ही ।।
तोको कहि पुनि कह्यो बाबा को बड़ो धूर्त वृषभान ।
तब मैं कह्यो ठग्यो कब तुम को, हसि लागी लपटान ।।
'भली कही तैं मेरी बेटी लयो आपनो दाउ ।
जो मुहि कह्यो सबै उनके गुन' हँसि २ कहत सुभाउ ।।
फेरि फेरि बूझति राधा सों सुनति हँसति सब नारि ।
सूरदास वृषभानु-घरनि जसुमति को गावति गारि ।।

'हमारे अंबर देहु मुरारी ।
लैं सब चीर कदम चढ़ि बैठे हम जल मांझ उघारी ।।
तुम कहवावत हौ नँदनन्दन, हम वृषभानु दुलारी' ।
'तुम्हरे अंबर जबहीं दैहौं जल तैं हूजै न्यारी' ।।
'तट पर बिना बसन क्यों आवैं लाज लगति है भारी ।
भूषन हार तुमहि को दीन्हों चीर हमहि देहु डारी' ।।

'हमारो देहु मनोहर चीर ।

कांपत सीत तनहि अति व्यापत हिम सम जमुना-नीर ।।
मानहिंगी उपकार रावरो, रौ कृपा बलबीर ।
है अति दुखित प्रान, बपु परसत प्रबल प्रचन्ड समीर ।।
हम दासी, तुम नाथ हमारे बिनवतिजल में ठाढी' ।
'जो तुम हमै नाथ कै जानौ, यह मांगे हम देहु ।।
जल तें निकसि आइ बाहर ह्वै बसन आपने लेहु ।'
कर धरि सीस गई हरि सनमुख मन में करि आनन्द ।।
ह्वै कृपालु सूरज प्रभु अम्बर दीने परमानन्द ।।

यह कमरी कमरी करि जानति ।
जाके जितनी बुद्धि हृदय में सो तितनी अनुमानति ॥
या कमरी के एक रोम पर बारौं चीर नील पाटम्बर ।
सो कमरी तुम निंदति गोपी तीनि लोक की जो आडंबर ॥
कमरी के बल असुर संहारे, कमरिहि तें सब भोग ।
जाति पाँति कमरी सब मेरी, सूर सबहि यह जोग ॥

अब तुम साँची बात कही ।
एते पर जुवतिन को रोकत, माँगत दान दही ॥
जो हम तुमहि कह्यो चाहत हो सो श्रीमुख प्रगटायो ।
नीके जाति उघारि आपनी जुवतिन भले हँसायो ॥
तुम कमरी के ओढन हारे पीतम्बर नहिं छाजत ।
सूरदास कारे तनु ऊपर कारी कमरी भ्राजत ॥

लैहौं दान इनन को तुमसों ।
मत्त गयंद हंस तुम सोहैं, कहा दुरावति मोसों ॥
केहरि कनक कलस अमृत के कैसे दुरैं दुरावति ।
बिद्रुम हेम वज्र के किनुका काहे न हमहि सुनावति ॥
खग कपोत कोकिला कीर मृग खंजन चंचल जानति ।
मनि कंचन के चित्र जरे हैं, एते पर नहिं मानति ॥
सायक चाप तुरय बनिजति हौ लिए सबै तुम जाहू ।
दान दिए बिनु जान न पैहौ, कैसे होत निबाहू ॥
यह बनिजति वृषभानु, सुता तुम हमसों बैर बढ़ावति ।
सुनहु सूर एते पै कहति हैं, हमधौं कहा लदावति ॥

राधे तेरो बदन बिराजत नीको ।
जब तू इत उत बंक बिलोकति होत निसापति फीको ॥
भृकुटी धनुष नैन सर साधे, सिर केसरि को टीको ।

मनु घूँघट पट मैं दुरि बैठो पारधिपति रति ही को ॥
गति मैं मत्त नाग ज्यों नागरि करे कहति हौं लीको ।
सूरदास प्रभु बिबिध भांति करि मन रिझयो हरि पीको ॥

राजति राधे अलक भलीरी ।
मुकुता मांग तिलक पनगिनि सिर सुत समेत भषुलेन चलीरी ॥
कुंकम आड़ स्रवन स्रमजल मिलि मधु पीवत छवि छींट अलीरी ।
चारु उरोज उपर यों राजत अरुझे अलिकुल कमल-कलीरी ॥
रोमावलि त्रिषली उर परसत, वंस बठैनट काम बसीरी ।
प्रीति सोहाग भुजा सिर मंडन जघन सघन बिपरित कदलीरी ॥
जावक चरन, पंचसरनायक समर जीति लै सरन चलीरी ।
सूरदास प्रभु को सुख दीन्हो, नख सिख राधे सुखनि फलीरी ॥

राधा जल बिहरित सखियन संग ।
ग्रीव प्रयंत नीर में ठाढ़ी छिरकति जल अपने अपने रंग ॥
मुख भरि नीर परस्पर डारति सोभा अतिहि अनूप बढ़ी तब ।
मनहु चंद्रगन सुधा गंडुकनि डारत हैं आनन्द भरे सब ॥
आई निकसि जानु कटि लौं सब अंजुरिन तें जल डारत ।
मानहुं सूर कनक वल्ली जुरि अमृत पवन मिस झारत ॥

जमुना जल बिहरत ब्रजनारी ।
तट ठाढ़े देखत नँदनदन मधुर मुरलि कर धारी ॥
मोर मुकुट, स्रवनन मनि कुंडल, जलजमाल उर भ्राजत ।
सुन्दर सुभग स्याम तनु नव घन बिच बग पांति बिराजत ॥
उर बनमाल सुभग बहु भांतिन असित लाल सित पीत ।
मनों सुरसरी तीर बैठें सुक बरनत बरन जु भीत ॥
पीताम्बर कटि तट, छुद्रावलि बाजत शब्द रसाल ।
सूरदास मनु कनक-भूमि ठिग बोलत रुचिर मराल ॥

उपमा हरि तन देखि लजाने ।
कोउ जल मांझ दुरे, कोउ बन में, कोऊ गगन समाने ॥
मुख निरखत ससि गो अम्बर को, तड़ित दसन छबि हेरो ।
मीन कमल कर चरन नयन डर जल मों कियो बसेरो ॥
भुजा देखि अहि राज सकाने, बिबरनि पैठे धाय ।
कटि निरखत केहरि डर मान्यो बन बन रहे दुराय ॥
गारी देहिं कबिन को बरनत श्रीअङ्ग पटतर देत ।
सूरदास हमको गिरमावत नाउं हमारो लेत ॥

चितवनि रोके हू न रही ।
श्याम सुन्दर-सिंधु सन्मुख सरित उमगि बही ॥
प्रेम-सलिल-प्रवाह-भंवरनि मिलि न थाह लही ।
लोभ लहरि कटाच्छ-घूंघट-पट करार ठही ॥
थके पल पथ नाव धीरज परत नाहिंन गही ।
सूर हिल मिल श्याम-सोभा फेरि हू न चही ॥

चितै रही राधा हरि को मुख ।
भृकुटी बिकट बिसाल नयन जुग देखत तनहि भयो रतिपति दुख ।
उतहि श्यामहू एकटक प्यारी छबि अङ्ग अङ्ग अवलोकत ।
रीझि रहे उत हरि इत राधा, अरस परस दोउ नोकत ॥
सखिन कह्यो वृषभानु-सुता सों देखे कुंवर कन्हाई ।
सूर स्याम येई हैं ब्रज में जिनकी होति बड़ाई ॥

थकित भई राधा ब्रजनारि ।
जो मन ध्यान करति अवलोकति ते अन्तरजामी बनवारि ॥
रतन जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर धुनि कल परम रसाल ।
मानहु चरन-कमल दल-लोभी निकटहि बैठे बाल मराल ॥
जुगल जंघ मरकतमनि-सोभा उलटी भांति संवारे ।
कटि काछनी, कनक-छुद्रावलि पहिरे नन्द दुलारे ॥
हृदय बिसाल लाल मोतिन बिच कौस्तुभमनि अति छाजत ।

मानहुँ नभ निरमल तारागन तामधि चंद्र बिराजत ॥
दुहुँ कर मुरलि अधर पर साए मोहन राग बजावत ।
चमकत दसन, मटकि नासापुट सटकि नयन मुख गावत ॥
कुण्डल-झलक कपोलनि मानहुँ मीन सुधासर क्रीड़त ।
भृकुटी धनुष, नैन खंजन मनु उड़त नहीं मन व्रीड़त ॥
देखि रूप ब्रजनारि थकित भइं क्रीट मुकुट सिर सोहत ।
ऐसे सूर स्याम सोभा निधि गोपी जन मन मोहत ॥

हरि-मुख निरखत नैन भुलाने ।
ये मधुकर रुचि-पंकज-लोभी ताही तें न उड़ाने ॥
कुण्डल मकर कपोलन के ढिग जनु रवि रैन-बिहाने ।
भ्रुव सुन्दर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने ॥
अरुन अधर, द्विज कोटि बज्र द्युति ससिगन रूप समाने ।
कुंचित अलक सिसीमुख मानो लै मकरंद निदाने ॥
तिलक ललाट, कंठ मुकुतावलि भूषानमय मनिसाने ।
सूरदास स्वामी अंग नागर ते गुन जात न जाने ॥

ब्रज बनिता देखति नँद नन्दन ।
नव घन नील बरन ता ऊपर खौर कियो तनु चंदन ।
कनक बरन, कटि पीत पिछौरी, उर भ्राजत बनमाल ॥
निरमल गगन सेत बादर पर मनो दामिनी-जाल ॥
मुकुतामाल बिपुल बग पंगति उड़त एक भइ जोति ।
सूर स्याम छबि निरखति जुवती हरष परसपर होति ॥

हरि मुख किधौं मोहनी, माई ।
अवलोकत अघात नहिं मेरे नैना ठगे ठगोरी लाई ॥
कुण्डल किरनि निकट भ्रू लोचन अरति मीन दृग सम चपलाई ।
स्रवनरंध्र नहिं निपुन दास जनु काम कुबैनी कलित बनाई ॥

छाजत रदन रदन छद की छबि, मंद माधुरी गिरा सुहाई।
जपा-कुसुमदल मनहुँ कमल पर तड़ित सकोस कोकिला गाई॥
सब बिधि बसीकरन की बांकी बलित बलाक अनुज बलभाई।
सरदास प्रभु बदन बिलोकत जकित थकित चित अनत न जाई॥

सुन्दर बोलत आवत बैन।

ना जानौं तेहि काल सखीरी! सब तन स्रवन कि नैन।
रोम रोम में शब्द सुरति की नख सिख ज्यों चख ऐन॥
एते मान बनी चंचलता सुनी न समुझी सैन।
तब तकि जकि ह्वै रही चित्रसम पलन लगत चित वैन॥
सुनहु सूर यह साँच कि संभ्रम, सपन किधौं दिनरैन।

नैना माई भूले अनत न जात!

देखि सखी सोभा जो बनी है माधव के मुसुकात॥
दाड़िम-दसन निकट नासा-सुक चोंच चलाइ न खात।
मनु रतिनाथ हाथ मृकुटी-धनुता अवलोकि डरात॥
बदन-प्रभा सुख चंचल लोचन आनन्द उर न समात।
मानहुँ भौंह जुवा रथ जोते ससिन चलत मृग मात॥
कुंचित केस, मधुर धुनि मुरली, सूरदास सुर सात।
मनहुँ कमल पर कोकिल कूजत अलिगन उपर उड़ात॥

गोपीजन हरिवदन निहारति।

कुंचित अलक बिधुरि रहे भ्रुव पर तापर तन मन वारति।
बदन सुधा सरसीरूह लोचन, मृकुटी दोउ रखवारी।
मनों मधुप मधुपानहि आवत देखि डरत जिय भारी॥
एक एक अलक लटकि लोचन पर यह उपमा एक आवत।
मनहु पन्नगिन उतरि गनन तैं दल पर फन परसावत॥

मुरली अधर धरे कलपूरित मन्द मन्द सुर गावत ।
सरस्याम नागर नारिन के चंचल चितहि चोरावत ॥

मनोहर है नैनन की भांति ।

मानहुँ दूरि करत बल अपने सरद-कमल की कांति ॥
इन्दीवर राजीव कसे से जीते सब गुन जाति ।
अति आनन्द सब्रीड़ा ताते बिकसत दिन अरु राति ॥
खंजरीट मृग मीन बिचारति उपमा को अकुलाति ।
चंचल चारु चपल अवलोकनि चितहि न एक समाति ॥
जब लगी परत निमेष अंतरा जुग समान पल जात ।
सूरदास वह रसिक राधिका निमिष निमिष अनखात ॥

देखि सखी ? मोहन मन चोरत ।

नैन कटाच्छ बिलोकनि भधुरी सुभग भृकुटि बिच मोरत ॥
चन्दनखौरि ललाट स्याम के निरखन अति सुख दाई ।
मानहु अरधचन्द्र तट अहिनी सुधा चोरावन आई ॥
मलयज भाल भृकुटि रेखा की कवि उपमा इक ल्यावत ।
मनो एक संग गङ्ग जमुन नय तिरछी धार बहावत ॥
भृकुटि चारु निरखि ब्रजसुन्दरि यह मन करति विचार ।
सूरदास प्रभु सोभासागर, कोउ न पावत पार ॥

हरिमुख निरखति नागरि नारि ।

कमलनयन के कमल बदन पर बारिज बारिज बारि ॥
सुमति सुन्दरी परसि प्रिया रस लंपट माँड़ी आरि ।
हारि जोहारि जो करति बसीठी प्रथमहिं प्रथम चिन्हारि ॥
राखति ओट कोटि जतननि करि झांपति अँचल झवारि ।
खंजन मनहुँ उड़न को आतुर सकत न पंख पसारि ॥

देखि सरूप स्याम सुन्दर को रही न पलक सँभारि।
देखहु सूर अधिक सूरति तिन अजहुँ न मानी हारि॥
तन मन नारि डारति वारि।

स्याम सोभासिन्धु जान्यो अंग अंग निहारि॥
पचि रही मन ध्यान करि करि लहति नाहिंन तीर।
स्यामतन जलरासि-पूरन महा गुन गंभीर॥
पीतपट फहरानि मानो लहरि उठत अपार।
निरखि छवि थकि तीर बैठी कहूँ वारन पार॥
चलत अंग त्रिभंग करिकै भौंह भावचलाय।
मनो बिच बिच भौंर डोलत चित्त परत भरमाय॥
स्रवन कुन्डल मकर मानो नैन मीन बिसाल।
सलिल-झलकनि रूप आभा देखु री नन्दलाल॥
बाहुदंड भुजंग मानों जलधि मांझ बिहार।
मुक्तमाला मनों सुरसरि ह्वै चली विधि धार॥
अङ्ग अङ्ग भूषन बिराजत कनक मुकुट प्रभास।
उदधि मथि नग प्रगट कीन्हों श्रीसुधा परगास॥
चकित भइँ तिय निरखि सोभा देह गति बिसराय।
सूर प्रभु छबि रासि-नागर जानि जानि नजाय॥
राधा परम निर्मल नारि।

कहति हौं मन कर्मना करि हृदय दुबिधा टारी॥
स्याम को एक तुही जान्यो दुराचरनी और।
जथा घट पूरन न डोलै, अधभरो डगडौर॥
धनी धन कबहूँ न प्रगटै धरै धनहि छपाय।
तैं महानग-स्याम पायो प्रगटि कैसे जाय॥
कहति हौं यह बात तोसों प्रगट करिहौं नाहिं।
सूर सखी सजान राधा परसपर मुसकाहिं॥

जो बिधना अपबस करि पाऊं।
तौ सखि कह्यौ होय कछु तेरो अपनी साध पुराऊं ॥
लोचन रोम रोम प्रति मांगौं, पुनि पुनि त्रास दिखाऊं ।
इकटक रहैं पलक नहिं लागै, पद्धति नई चलाऊं ॥
कहा करौं छबि-रासि स्यामधन लोचन द्वै नहि ढाऊं ।
एते परयेनि निमिष सूर सुनि यह दुख काहि सुनाऊं ॥

द्वै लोचन साबित नहिं तेउ ।
बिनु देखे कल परत नहीं छन, एते पर कीन्हे यह टेउ ॥
बार बार छवि देख्योइ चाहत साथी निमिष मिले हैं पेऊ ।
तू तो ओट करत छिन ही छिन देखति ही भरि आवत द्वेउ॥
कैसे मैं उनको पहिचानौं नैन बिना लखिये क्यों भेउ।
ये तौ निमिष परत भरि आवत निठुर बिधाता दीन्हें जेउ ॥
कहा भई जो मिली स्याम सों तू जान्यो जानै सब कैउ ।
सूरस्याम को नाम स्रवन सुनि दरसन नीके देतन वेउ॥

मन मेरो हरि साथ गयोरी।
द्वारे आय स्यामघन सजनी हँसि मो-तन ते संग लयोरी ॥
ऐसे मिल्यो जाइ मोको तजि मानहुँ उनही पोषिजयोरी ।
सेवा चूक परी जो मोतें मन उनको धौं कहा कियोरी ॥
मोको देखि रिसात हते यह तेरे जिय कछु गर्व भयोरी ।
सूर स्याम धरि अङ्ग भुलानो मन बच क्रम मोहिं छाड़ दियोरी॥

स्याम करत हैं मन की चोरी ।
कैसे मिलत आनि पहले ही कहि कहि बतियां भोरी ॥
लोक लाज की कानि गमाई फिरति गुड़ी बस डोरी ।
ऐसे ढंग स्याम अब सीखे चोर भयो चित कोरी ॥
माखन की चोरी सहि लीन्ही बात रही वह थोरी।
सूर स्याम भए निडर तबहिं तें गोरस लेत अंजोरी ॥

तुम जानति राधा है छोटी।

चतुराई अङ्ग अङ्ग भरी है पूरन ज्ञान बुद्धि की मोटी॥
हमसों सदा दुरावति सो यहि बात कहै मुख चोटी पोटी।
कबहुँ स्याम तें नेक न बिछुरति, किए रहति हमसों हठ ओटी॥
नन्दनन्दन याही के बस हैं बिबस देखि बेंदी छबि चोटी।
सूरदास प्रभु वै अति खोटे, यह उनहू तें अति ही खोटी॥

कहि राधा किन हार चोरायो?

ब्रज-जुवतिनि सबहिन मैं जानति घर घर लै लैनाम बतायो॥
स्यामा, कामा, चतुरा, नवला, प्रमुदा, सुमदा नारि॥
सुखमा, सीला, अवधा, नन्दा, बृन्दा जमुना सारि॥
कमला, तारा, बिमला, चंद्रा चन्द्रावलि सुकुमारि।
अमला, अबला, कंजा, मुकुता, हीरा, नीला, प्यारि॥
सुमना, बहुला, चंपा, जुहिला, ज्ञाना, भाना भाउ।
प्रेमा, दाभा, रूपा, हंसा, रंगा, हरषा जाउ॥
द्रुमिला, रंभा, कृष्णाध्याना, मैना, नैना रूप।
रत्ना, कुमुदा, मोहा, करुना, ललना लोभा नूप॥
इतनिन में कहि कौने लीन्हो ताको नाउं बताउं?।
सूर स्याम हैं चोर तिहारे मैं जानति सब दाउं॥

राधा को मैं तबहीं जानी।

अपने कर जे मांग सँवारै रचि रचि बेनी बानी॥
मुख भरि पान मुकुर लै देखति तिनसों कहति अजानी।
लोचन आंजि सुधारति काजर, छांह निरखि मुसुकानी॥
बार बार उरजनि अवलोकति, उनतें कौन सयानी।
सूरदास जैसी है तैसी मैं बाको पहिचानी॥

राधा को कुछु और सुभाउ ।

हम देखति हरि की औरहि अङ्ग यह निरखतिसतिभाउ ॥
यह है बिन कलंक की सांची, हम कलंक में सानी ।
हम हरि की दासी सम नाही, यह हरि की पटरानी ॥
याकी अस्तुति हम कह करिहैं ? रसना एक न आवै ।
सूर स्याम कोई नहिं जाने भजन-प्रताप बतावै ॥

धन्य धन्य वृषभानु-कुमारी ।

धनि माता, धनि पिता, धन्यभुव धनि तोसी उपजारी ॥
धन्य दिवस, धनि निसा तबहिं की, धन्य धरी, धनि जाम ।
धन्य कान्ह तेरे बस जेहैं, धनि कीन्हें बस स्याम ॥
धनि मति, धनि गति, धनि तेरो हित, धन्यभक्ति धनिभाउ ।
सूरस्याम पति धन्य नारि तू, धनि धनि एक सुभाउ ॥

सुन राधा ? यह कहा बिचारै ।

बे तेरे रङ्ग तू उनके रङ्ग, अपनो मुख काहे न निहारै ॥
जो देखै तौ छांह आपनी स्याम हृदय ह्यां छाया ।
ऐसी दसा नन्दनन्दन की, तुम दोउ निर्मलकाया ॥
नीलाम्बर स्यामल तनुकी छबि, तुव छबि पीत सुबास ।
घन भीतर दामिनी प्रकासत, दामिनि घन चहुँ पास ॥
सुनरी सखी बिलग कहं तोसों चाहति हरि को रूप ।
सूर सुनहु तुम दोउ सम जोरी इक इक रूप अनूप ॥

पित तेरे बस यों री माई ।

ज्यों सङ्ग ही सङ्ग छाँह देह बस प्रेम कह्यो नहिं जाई ॥
ज्यों चकोर बस सरद्-चन्द्र के, चक्रवाक बस भान ।
जैसे मधुकर कमलकोस बस त्यों बस स्याम सुजान ॥
ज्यों चातक बस स्वाति बूँद के, तन के बस ज्यों नीय ।
सूरदास प्रभु अति बस तेरे समुझि देखि धौं हीय ॥

राधा चकित भई मन माहीं।
अब ही स्याम द्वार ह्वै झांके ह्याँ आए क्यों नाहीं॥
आपुन आइ तहां जो देखे मिले न नन्दकुमार।
आवत हे फिरि गए स्याम घन अति ही भयो विचार॥
सूनो भवन अकेली मैंही नीके उझकि निहारयो।
मोतें चूक परी मैं जानी तातें मोहिं बिसारयो॥
इक अभिमान हृदय करि बैठी, एते पर झहरानी।
सूरदास प्रभु गए द्वार को तब व्याकुल पछितानी॥

तैहीं उनको मूँड़ चढ़ायो।
भवन बिपिन संग ही संग डोलैं ऐसेहि भेद लखायो॥
पुरुष भ्रमर दिन चारि आपने अपनो चाउ सरायो।
नंदनंदन बहु-खनि-खन हैं यहै जानि बिसरायो॥
अपनी बात आपने कर है हमको तब न सुनायो।
सुनहु सूर बिन मान काहौ किन अपनो पिय अपनायो॥

मैं अपनी सी बहुत करी री!
मोसौं कहा कहति तू माई! मन के संग मैं बहुत सरीरी॥
राखौं अटकि उतहि को धावै, वाकी बैसिया परनि परीरी।
मोसौं बैर करै रति उनसों, मोको छाँड़ी द्वार खरीरी॥
अजहूँ मान करौ मन पाऊँ, यह कहि इत उत चितै डरीरी।
सुनहु सूर पाँचनि मत एकै, मोमें मैंही रही परीरी॥

सारङ्ग सारङ्ग-धरहि मिलावहु।
सारँग विनय करत सारँग सों, सारँग दुख बिसरावहु॥
सारँग समय दहत अति सारँग, सारँग तिनहिं दिखावहु।
सारँग पति सारँगधर जैहै, सारँग जाइ मनावहु॥
सारँग चरन सुभगकर सारँग सारँग नाम बोलावहु।
सूरदास सारँग-उपकारिनि सारँग मरत जिवावहु॥

धीरज करि री नागरी ! अब स्यामहिं ल्याऊँ ।
अति व्याकुल जनि होहिरी सुख अबहिं कराऊँ ॥
देखि दसा सहि नहिं सकी मनहीं अकुलानी ।
मैं राधा की प्रिय सखी यह कहि पछितानी ॥
झुरि झुरि पियरी भई है यह तौ सुकुमारी ।
ऐसी चूकौ है परी मोपै गिरिधारी ॥
प्यारी को मुख धोयकै पट पोंछि सँवारयो ।
तरक बात बहुतै कही, कछु सुधि न सँभारयो ॥
साधधान करिकै गई, ल्याऊँ गिरिधर को ।
सूर तहाँ आतुर गई पाए हरि बर को ॥

ललिता-मुख चितवत मुसुकाने ।
आप हँसी पिय-मुख अवलोकत दुहुँन मनहिं मनजाने ।
अति आतुर धाई कहँ आई काहे बदन झुराए ।
बूझत है पुनि पुनि नँद-नंदन चितवत नैन घुराए ॥
तब बोली वह चतुर नागरी अचरज-कथा सुनाऊँ ।
सूर स्याम जो चलौ तुरत ही नैननि जाय दिखाऊँ ॥

अद्भुत एक अनूपम बाग ।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है,
तापर सिंह करत अनुराग ॥
हरि पर सखर, सरपर गिरिवर,
गिरि पर फूले कंज पराग ।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर,
ता ऊपर अमृत फल लाग ॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव,
तापर शुक पिक मृगमद काग ।

खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर,
ता ऊपर इक मनिधर नाग ॥
अंग अंग प्रति और और छबि,
उपमा ताके करत न त्याग ।
सूरदास प्रभु पिवहु सुधारस,
मानो अधरनि के बड़ भाग ॥

बिरातज अंग अंग इति बात ।

अपने कर करि धरे बिधाता षट खग नव जल जात ॥
द्वै पतंग, ससि बीस, एक फनि, चारि बिविध रंग घात ।
द्वै पिक बिंब, बतीस बज्रकन , एक जलज पर थात ॥
इक सायक, इक चाप चपल अति, चिबुक में चितबिकात ।
दुह मृनाल, मासूर उमय, द्वै कदलि-खंभ बिनु पात ॥
इक केहरि, इक हँस गुप्त रहे तिनहि लग्यो यह गात ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को अति आतुर अकुलाब ॥

नागर छबि पर रीझत स्याम ।

कबहुंक वारत हैं पीताम्बर, कबहुँक वारत मुक्तादाम ॥
कबहुँक वारत हैं कर मुरली, कबहुंक वारत मोहन नाम ।
निरखि रूप सुख अन्त लहत नहिं तनुमनु वारत पूरन काम ।
वारम्बार सिहात सूर प्रभु देखि देखि राधा सी बाम ।
इनको पलक ओट नहिं करि हौं मन यह कहत बासरहुजाम ॥

स्याम निरखि प्यारी अँग अँग ।

सकुचि रहत मुख तन नहिं चितवत जेहि बस रहत अनंत अनंग ॥
चपल नैन दीरघ अनियारे, हाव भाव नासा मति भंग ।
बारौं मीन कोटि अम्बुजगन, खंजन वारत कोटि कुरँग ॥

लोचन नहिं ठहरात स्याम के कबहुं अंग नैना मुख रँग ।
सूरदास प्रभु यों प्यारी बस ज्यों बस डोर फिरत सङ्ग चंग ॥

(स्याम भये राधा बस ऐसे ।

चातक स्वाति, चकोर चन्द्र ज्यों, चक्रवाक रबि जैसे ।
नाद कुरंग, मीन जल की गति, ज्यों तनु के बस छाया ।)
इकटक नयन अङ्ग छबि पोहै थकित भये पति जाया ॥
उठे उठत बैठे बैठत हैं चले चलत सुधि नाहीं ।
सूरदास बड़भागिनि राधा समुझि मनहिं मुसुकाहीं ॥

बहुरि श्रीराधा सजति सिंगार ।

मानहुँ काम हार पहिरावति अँग रन जीते सुरति अपार ॥
कटि तट सुभटनि देन रसन पट, भुज भूषन, उरहार ।
कर कंकन काजर, नक बेसरि, दीन्हो तिलक लिलार ॥
बीरा बिहँसि देत अधरनि को, सन्मुख सहे प्रहार ।
सूरदास प्रभु के जु बिमुख भए बांधति कायर बार ॥

आज अति राधा रुचिर बनी ।

प्रति प्रति अङ्ग अनङ्ग जिते, रस बस त्रैलोक्य-धनी ॥
सोभित केस बिचित्र भाँति दुति सिखि-सिखंड-हरनी ।
बिरची माँग सभाग रागनिधि कामधाम-सरनी ॥
अलक, तिलक राजत अकलंकित, मृगमद-अङ्क-खनी ।
खुमी जराव फूल दुति यों मनौं दुद्धर गति रजनी ॥
भौंह कमान समान, बान मनो हैं जुग नयन अनी ।
नासा तिलक प्रसून बिंबाधर अमल कमल-बदनी ॥
चिबुक मध्य मेचक रुचि राजति बिंद, कुंद-रदनी ।
कंबु कंठ, बिधि लोक बिलोकत सुन्दरि एक गनी ॥
बाँह मृनाल, लाल कर पल्लव, मदगज-गति-गवनी ।

पतिमन-मनि-कंचन-संपुट कुच, रोमराजी तटनी ॥
नाभि भँवर, त्रिवली तरंग गति, पुलिन तुलिन ठटनी ।
कृष कटि, प्रथु नितंब किंकिन जुत, कदलि खंभ-जघनी ॥
रचि आभरन सिंगार अङ्ग सजि रति-पति ज्योंसजनी ।
जीते सूरस्याम गुन कारन मुख न मुरयो लजनी ॥

नाम कहा सुन्दरी तुम्हारो, क्यों मोसों नहिं बोलति हौ ?
हँसे हँसति, चितये चितवति तुम, तनुडोले तनुडोलति हौ ॥
परम चतुर मैं जानत तुमको, मोपर भौंह मरोरति हौ।
लटकति सुभग नासिका बेसरि पुनि पुनि बदन सकोरति हौ॥
अरुन अधर, चितहरन चिबुक अति, दामिनि दसन लजावति हौ
ऐसे मुख की बचन-माधुरी काहे न हमहि सुनावति हौ ? ॥
कहौ बचन काकी तुम घरनी ? काके मन को चोरति हौ ?
सुनहु सूर सहजहि कीधौं रिस, मोसों लोचन जोरति हौ ॥

कछु रिस, कछु नागरि जिय धरकी।
यह तो जोबन-रूप-गहीली सङ्का मानति हरि की ॥
यह बिपरीत होन है चाहत ब्रज यह आपसु मानी।
यह तौ गुननि उजागरि नागरि, वै तौ चतुर बनानी ॥
कर दरपन प्रतिबिंब निहारत, चकित भई सुकुमारी।
सूर स्याम अङ्ग निरखत वा छबि नागरि भोरी भारी ॥

(बैठी रही कुँवरि राधा हरि अँखियां मूँदी आय।
अतिहि बिसाल चपल अनियारे नहिं पिय पानि समाय ॥
खन खोलत, खन ढांकत, नागरि, मुख रिस मन मुसुकाय।
ज्यों मनि-धर मनि छांडि बहुरि फिरि फन तर धरत छपाय ॥
स्याम अँगुरि अनि अन्तर राजत आतुर दुरि दरसाय।
मानो मरकत मनि पिंजरनि में बिबि खंजन अकुलाय ॥

कर कपोल बिच सुभग तरौना सोभा बढ़ी सुभाय।
मनु सरोज द्वै मिलत सुधा निधि, बिबिरविसङ्ग सहाय॥
अपने पानि पकरि मोहन के कर धरि लिए छिड़ाय।
कमल चकोर चँचरि जनु द्वै ससि दिन कत जुरतिसगाय॥
उपमा कहि देउँ को लायक देखो बहुत बनाय।
सूरदास प्रभु-दंपति देखत रति स्यों काम लजाय॥

(देखो स्याम अचानक जात।
ब्रज की खोरि अकेले निकसे पीताम्बर कटि पर फहरात॥
लटकत मुकुट, मटक भौंहनि की, चटकत चलत मंद मुसुकात।
पग द्वै जात, बहुरि फिरि हेरत, नैन सैन दैके नन्दतात॥
निरखत नारि-निकर बिथकित भये दुख सुख व्याकुल झुलति
सिहात।
सूर स्याम अङ्ग अङ्ग माधुरी चमकि चमकि चक चौंधत गात॥)

सधन कल्पतरू तर मन मोहन।
दच्छिन चरन चरन पर दीन्हे, तनु त्रिभंग मृदु जोहन॥
मनिमय जड़ित मनोहर कुंडल, सिखी चंद्रिका सीस रही फबि।
मृगमद-तिलक, अलक घुँघरारी, उर बनमाल कहौं जो वै छबि॥
तनु घनस्याम पीत पट सोभित, हृदय पदिक की पाँति दिपतदुति।
करज मुद्रिका, कर कंकन छबि, कटि किंकिनि, नूपुर पगभ्राजत॥
नख सिख कांति बिलोकि सखी री ससि औभान मगन तनुलाजत
नख सिख रूप अनूप विलोकति नटवर भेष धरे जुललित अति॥
रूपरासि जसुमति को ठोटा बरनि सकै नहिं सूर अलपमति॥

(देखि स्याम मन हरष बढ़ायो।
तैसिय सरद चांदिनी निरमल तैसोइ रासरङ्ग उपजायो॥
तैसिय कनक बरन सब सुन्दरि, यह सोभा पर मन ललचायो।
तैसी हंससुता पवित्र तट तैसोइ कल्पवृक्ष सुखदायो॥

करौं मनोरथ पूरन सबके इहि अन्तर इक खेद उपायो।
सूर स्याम रचि कपट-चतुरई जुवतिन के मन यह भरभायो॥)

(माता पिता तुम्हरें धौं नाहीं ?

बारम्बर कमल-दल-लोचन यह कहि कहि पछिताहीं॥
उनके लाज नहीं बन तुमको आवन दीन्हीं राति।
सब सुन्दरी सबै नव जौबन, निठुर अहिर की जाति॥)
की तुम कहि आई को ऐसेहि, कीन्ही कैसी रीति ?
सूर तुमहिं यह नाही बूझी बड़ी करी बिपरीति॥

अब तुम कही हमारी मानो।

बन में आइ रैन-सुख देख्यो यहै लह्यो सुख जानो॥
अब ऐसी कीजो जनि कबहूँ, जानति हौ मन तुमहूँ।
यह धुनि सुनैं कहूँ जो कोउ, तुमहिं लाज अरु हमहूँ॥
हम तौ आजु बहुत सरमाने मुरली टेरि बजायो।
जैसो कियो लह्यो फल तैसो, हमही दोषन आयो॥
अब तुम भवन जाहु पति पूजहु परमेश्वर की नाईं।
सूर स्याम जुवतिन सों यह कहि सब अपराध छमाई॥

(निठुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी।
चकृत भई सब सुनि रहीं, नहिं आवै बानी॥
मनु तुषार कमलन परयो ऐसी कुँभिलानी।)
मनो महानिधि पायकै खोऐ पछितानी॥
ऐसी ह्वै गइ तनुदसा पिय की सुनि बानी।
सूर बिरह-व्याकुल भई बूड़ीं बिनु पानी॥

(निठुर बचन जनि बोलहु स्याम।
आस निरास करौ जनि हमरी, व्याकुल बचन कहति हैं बाम॥
अन्तर कपट दूरि करि डारौ, हम तनु कृपा निहारो।)

कृपासिंधु तुमको सब गावत अपनो नाम सँभारो।
हमको सरन और नहिं सूझै, कापै हम अब जाहिं ?
सूरदास प्रभु निज दासिन को चूक कहा पछिताहिं ॥

तुम पावत हम घोष न जाहि।
कहा जाय लैहैं ब्रज में हम ? यह दरसन त्रिभुवन में नाहिं।
तुमहूँ तें ब्रज हितू कोउ नहिं, कोटि कहौ नहिं मानै।
काके पिता ? मात हैं काके ? कोटि कहौ नहिं जानै ॥
काके पति सुत ? मोह कौन को ? घर है कहां पठावत।
कैसो धर्म ? पाप है कैसो ? आस निरास करावत ॥
हम जानैं केवल तुमही को और वृथा संसार।
सूर स्याम निठुराई तजिए, तजिय बचन बिन सार ॥

अंचल चंचल स्याम गह्यो।
लै गए सुभग पुलिन जमुना के अङ्ग अङ्ग भेष लह्यो ॥
कल्प तरोवर तर बंसीबट राधा रति-गृहधाम।
तहाँ रासरस-रङ्ग उपायो सँग सोभति ब्रजबाम।
मध्य स्याम घन, तड़ित भामिनी, अति राजति सुभजोरी।
सूरदास प्रभु नवल छबीले नवल छबीली गोरी।

जहाँ स्यामघन रास उपायो।
कुमकुम-जल सुख बृष्टि रमायो।
धरनी रज कपूरमय भारी।
बिबिध सुमन-छबि न्यारी न्यारी।
जुवती जुरि मंडली बिराजै।
बिच बिच कान्ह तरुनि बिचभ्राजै।
अनुपम लीला प्रगट देखायो।
गोपिन को कीन्हो मनभायो।
बिच श्री स्याम नारि बिचगोरी।

कनकखंभ मरकत खचि धोरी ॥
सोभासिंधु हिलोर हिलोरी ।
सूर कहा मति बरनै थोरी ॥

परस्पर स्याम ब्रजबाम सोहै ।

सीस श्रीखंड, कुंडल जड़ित मनिस्रवन, निरखि छबि स्याम मन तरुनि मोहै ॥ नासिका ललित, बेसरि बनी अधर तट, सुभग तांटंक छबि कहि न जाई । धरनि पग पटकि, कर झटकि, भौंहन मटकि अटकि मन तहाँ रीझे कन्हाई ॥ तब चलत हरि मटकि, रही जुवती भटकि, लटकि लटकन खटकि छबि बिचारैं । कहति प्रभु सूर बहुरौ चलौ बैसही हमहु वैसे चलैं जो निहारैं ॥

देखी माई रूप-सरोवर साज्यो ,

ब्रज-बनिता बरबारि-वृन्द में श्री ब्रजराज विराज्यो ॥
लोचन जलज, मधुप अलकावलि, कुंडल मीन सलोल ।
कुच चकवाक बिलोकि बदन बिधु-बिछुरि रहे अनबोल ॥
मुक्तामाल मनो बगपंगति करत कुलाहल कूल ।
सारस हँस मध्य सुक-सेना बैजयंति सम तूल ॥
पुरइनि कपिस निचोल बिबिध रंग, बिहसत सचु उपजावै ।
सूरस्याम आनंदकंद की सोभा कहत न आवै ॥

निरतत हैं दोउ स्यामा स्याम ।

अंग-मगन पिय ते प्यारी अति निरखि चकित ब्रजबाम ॥
तिरप लेति चपला सी चमकति झमकति भूषन अङ्ग ।
या छबि पर उपमा कहुँ नाहीं निरखत बिबस अनंग ।
श्री राधिका सकल-गुन-पूरन वाके स्याम अधीन ।
संग तें होत नहीं कहुँ न्यारी भई रहति अति लीन ॥

रस-समुद्र मानों उछलत भयो सुन्दरता की खानि ॥
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए कहत न कछू बखानि ॥

दोऊ राजत स्यामा स्याम ।
ब्रजजुवती मंडली बिराजत देखत सुरगन-बाम ॥
धन्य धन्य वृन्दाबन को सुख सुरपुर कौने काम ।
धनि वृषभानु-सुता, धनि मोहन, धनि गोपिन को नाम ॥
इनकी को दासी सरि ह्वै है धन्य सरद की जाम ।
कैसेहु सूर जनम ब्रज पावैं, यह सुख नहिं तिहुँ धाम ॥

बिराजत मोहन मंडल-रास ।
स्यामा सुधा-सरोवर मानो क्रीड़त बिबिध बिलास ॥
ब्रजजुवती सत जूथ मंडली मिलि कर परस करे ।
भुज मृनाल भूषन तोरन जुत, कंचन खंभ खरे ॥
मृदु पदन्यास, मंद मलयानिल, बिगलित सीस निचोल ।
नील, पीत, सित, अरुन धुजा चल सीर समीर झकोल ॥
बिपुल पुलक कंचुकि बँद छूटे हृदय अनंद भए ।
कुच जुग चक्रवाक अवनी तजि अन्तर रैनि गए ॥
दसन कुंद दाड़िम दुति दामिनि प्रगटत ज्यों दुरिजात ।
अधर बिंब-मधु-अमी जलदकन प्रीतम-बदन समात ॥
गिरत कुसुम कबरी केसन तें टूटत हैं उरहार ।
सरद-जलद मनों मंद किरनकन कहूँ कहूँ जलधार ॥
प्रफुलित बदन-सरोज सुन्दरी अति रस नैन रँगे ॥
पुहुकर पुंडरीक पूरन मानों खंजन केलि खगे ॥
पृथु नितंब, करभोर, कमल पद, नखमनि चंद्र अनूप ।
मानहु लब्ध भयो बारिजदल इन्दु किये दस रूप ॥
श्रुति-कुंडल धर गिरत न जानति अति आनंद भरी ।
चरन-परस ते चलत चहूँ दिसि मानहुँ मीन करी ॥

चरन-रुनित, नूपुर, कटि किंकिनि, करतल ताल रसाल।
तरुनी नयन समेत सहज सुख मुखरत मधुर मराल॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी, उपजति तान तरंग।
निकट बिटप मनु द्विज-कुल कूजत, बयबल बैठ अनंग॥
सकल बिनोद सहित सुरललना मोहे सुर नर नाग।
बिथकित उडुपति-बिंब बिराजत श्री गोपाल अनुराग॥
जाचत दास आस चरनन की अपनी सरन बसाव।
मन अभिलाष स्रवन जस-पूरित सूरहिं सुधा पिआव॥

आजु निसि रास-रंग हरि कीन्हों।
ब्रजबनिता बिचस्याम मंडली, मिलि सबको सुख दीन्हों॥
सुरललना सुर सहित बिमोहे, रच्यो मधुर सुर गान।
नृत्य करत उघटत नाना बिधि, सुनि मुनि बिसरयो ध्यान॥
मुरली सुनत भए सब ब्याकुल नभ, धरनी, पाताल।
सूरस्याम काको न किए बस रचि रस रास रसाल॥

स्यामा स्याम रिझावति भारी।
मन मन कहति और नहिं मोसी पिय को कोऊ प्यारी।
ध्रुवा छंद धुरपद जस हरि को हरि ही गाय सुनावति।
आपुन रीझि कंत को रिझवति यह जिय गर्व बढ़ावति॥
निरतति उघटति गति सँगीत पद सुतत कोकिला लाजति।
सूरस्याम नागर अरु नागरि ललना सुलप मंडली राजति॥

रास-रस स्रमित भई ब्रजबाल।
निसि सुख दै जमुना-जल लैगए भोर भयो तेहि काल॥
मनकामना भई परिपूरन, रही न एकौ साध।
षोड़स सहस नारि सँग मोहन कीन्हों सुख आगाध॥
जमुना-जल बिहरत नँदनंदन संग मिलीं सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी वृन्दाबन रवि-तनया सुखकारि॥

बिहरत हैं जमुनाजल स्याम।
राजत हैं दोउ बांहांजोरी दंपति अरु ब्रज बाम ॥
कोउ ढाढ़ी जल जानु जंघ लौ, कोउ कटि हिरदै ग्रीव।
यह सुख बरनि सकै ऐसो को ? सुन्दरता की सींव ॥
स्याम अङ्ग चंदन की आभा, नागरि केसरि अंग।
मलयज पंक कुमकुमा मिलिकै जल जमुना इक रंग ॥
निसि स्रम मिट्यो, मिट्यो तनु आलस, परसि जमुन भई पावन।
सूरस्याम जल मध्य जुवति-गन जन जन के मन भावन ॥

(ललकत स्याम मन ललचात।
कहत हैं घर जाहु सुन्दरि मुख न आवति बात ॥
षट सहस दस गोपकन्या रैनि भोगीं रास।
एक छिन भइ कोउ न न्यारी सबनि पुरई आस ॥)
बिहँसि सब घरघर पठाईं ब्रज गईं ब्रज बाल।
सूर प्रभु नँद धाम पहुँचे, लख्यो काहुन ख्याल ॥

बिजयन्ती बिराजति राधा रूप-निधान।
सुन्दर ताको पुंज प्रगट ही को पटतर तिय आन ॥
सिंदुर सीस, माँग मुक्तावलि, कच कबरी अविनान।
मनहुँ चंद्रमुख कोपि हन्यो रिपु राहु विषम बलवान ॥
तरल तिलक ताटंक गंड पर झलकत कल बियकान।
मानहुँ ससि सहाय करिबे को रन बिरचै द्वै भान ॥
दीरघ नैन, नासिका बेसरि, अरुन अधर छबिवान।
खंजन सुक नहिं बिंब समित को लज्जित भए अजान ॥
को कहि सकै उरोजन की छबि कंचन-मेरु लजान।
श्री फल सकुचि रहे दुरि कानन, सिखर हियो बिहरान ॥
रोमावलि त्रिवली छबि छाजत जनु कीन्ही यह ठान।

कृश कटि, सबल दंड बंधन मनों बिधि दीन्हों बंधान।
अङ्ग अङ्ग आभूषन की छबि कापै होइ बखान।
सूरदास-प्रभु रसिक सिरोमनि बिलसहु स्याम सुजान।

आजु राधिका-रूप अन्हायो।

देखत बनै, कहत नहिं आवै, मुख छबि उपमा अन्त न पायो।
अनुपम अलक तिलक केसरि को ता बिच सेंदुर-बिंदु बनायो।
मानो पुन्यो-चंद्र खेत चढ़ि लरि सुरभान सों घायल आयो।
कानन की बारी अति राजित मनहुँ मदन रथ चक्र चढ़ायो।
मानहुँ नाग जीति मनि माथे भरि सोहाग को छत्र तनायो
बंकति भौंह, चपल अति लोचन, बेसरि रस मुकुता हल छायो।
मानो मृगनि गमी-भाजन भरि पिवत न बन्यो दुहूँ ढरकायो।
अधर दसन रसना कोकिल ज्यों तिमिर जीति बिच चिबुक लगायो।
मनहुँ देखि रवि कमल प्रकासत तापर भृङ्गी-सावक स्वायो।
कंचुकि स्याम सुगंध सँवारी, चौकी पर नग बन्यो बनायो।
मानो दीपक उदित भवन में तिमिर सकुच सरनागत आयो।
भूषन भुजा ललित लटकन वर मनहु मिले अलिपुंज सहायो।
एतेहु पर रूठि सूर-प्रभु लै दूती दरपन देखरायो।

तुलसी-खंड

दोहा—उठे लषन निसि बिगत सुनि, अरुन सिखा धुनि कान।
गुरुते पहिले जगत पति, जागे राम सुजान॥

सकल सौच कर जाइ नहाए, नित्य निबाहि मुनिहिं सिर नाए।
समय जानि गुरु आयसु पाई, लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप बागबर देखेउ जाई, जहँ बसन्त ऋतु रही लुभाई।
लागे बिटप मनोहर नाना, बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नवपल्लव फल सुमन सुहाए, निज संपति सुरतरूहिं लजाए।
चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजत बिहँग नचत कल मोरा॥
मध्यभाग सर सोह सुहावा, मनि सोपान बिचित्र बनावा।
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा, जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

[दोहा—बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

चहुँदिसि चितै पूछि मालीगन, लगे लेन दल फूल मुदित मन।
तेहिं अवसर सीता तहँ आई, गिरिजा पूजन जननि पढाई॥
संग सखी सब सुभग सयानी, गावहिं गीत मनोहर बानी।
सरसमीप गिरिजागृह सोहा, बरनि न जाई देखि मनमोहन॥
मज्जन करि सर सखी समेता, गई मुदित मन गौरि निकेता।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा, निज अनुरूप सुभग बर मांगा॥
एक सखी सिय संग बिहाई, गई रहीं देखन फुलबाई।
तेइ दोउ बन्धु बिलोकेउ जाई, प्रेम बिबस सीता पहँ आई॥

दो०—तासु दसा देखी सखिन, पुलक गात जल नैन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बैन॥

देखन बाग कुँवर दोउ आए, बय कीसोर सब भाँति सुहाए।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनुबानी॥
सुनि हरषी सब सखी सयानी, सियहिय अति उतकंठा जानी।
एक कहहि नृप सुतते आली, सुने जे मुनिसंग आए काली॥
जिन निज रूप मोहनी डारी, कीन्हे स्वबस नगर नरनारी।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू, अवसि देखिये देखन जोगू॥
तासु बचन अति सियहि सुहाने, दरस लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्रकरि प्रियसखि सोई, प्रीति पुरातन लखै न कोई॥

दो०—सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु शिशुमृगी सभीत॥

कंकण किंकिणि नूपुर धुनिसुनि, कहत लषन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही, मनसा विश्वविजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहिं ओरा, सियमुख ससि भये नयन चकोरा॥
भये बिलोचन चारु अचंचल, मनहुं सकुचि निमि तजेउ दृगचल।
देखि सीय सोभा सुख पावा, हृदय सराहत बचन न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुराई, बिरचि विश्व कहँ प्रगट दिखाई॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छबि गृहदीप सिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरिय विदेह कुमारी॥

दो०—सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि
बोले सुचि मन अनुजसन, बचन समय अनुहारि॥

तात जनक तनया यह सोई, धनुषयज्ञ जेहिकारन होई।
पूजन गौरि सखि लै आई, करति प्रकाश फिरति फुलवाई॥
तासु बिलोकि अलौकिक शोभा, सहज पुनीत मोर मन छोभा।

सो सब कारन जान बिधाता, फरकहि सुभग अङ्ग सुनु भ्राता ॥
रघुबंशिनकर सहज स्वभाऊ, मन कुपंथ पग धरै न कोऊ।
मोहिं अतिशय प्रतीति जियकेरी, जेहि सपनेहु परनारिन हेरी ॥
जिनके लहहिं न रिपुरण पीढी, नहिं लावहिं पर तियमन डीढी।
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं, ते नखर थोरे जग माहीं ॥

दो०—करत बतकही अनुजसन, मन सियरूप लुभान।
मुखसरोज मकरंदछबि, करत मधुप इव पान ॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता, कहँ गए नृपकिशोर मन चीता।
जहँ बिलोकि मृग शावक नयनी, जनु तहँ वर्ष कमल सित श्रयनी ॥
लता ओट सब सखिन लखाए, स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने, हर्षे जनु निजनिधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छबि देखी, पलकनहूँ परिहरी निमेषी।
अधिक सनेह बिवस भइ भोरी, सरदससिहिं जनु चितव चकोरी ॥
लोचन मगु रामहिं उर आनी, दीन्हे पलक कपाट सयानी।
जब सिय सखिन प्रेम बस जानी, कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी

दो०—लताभवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउभाई।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल बिलगाई ॥

सोभासींव सुभग दोउ बीरा, नील पीत जलजात सरीरा।
काकपक्ष शिर सोहत नीके, गुच्छा बिचबिच कुसुम कलीके ॥
भाल तिलक स्रमबिंदु सुहाए, स्रवन सुभग भूषन छबिछाए।
बिकट भृकुटि कच घुंघरवारे, नवसरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला, हास बिलास लेतजनु मोला।
मुख छबि कहि न जाई मोहिं पाहीं, जेहि बिलोकि बहुकाम लजाहीं ॥
उर मणि माल कंबुकल ग्रीवा, कामकलभकर भुजबल सींवा।

सुमन समेत वामकर दोना, साँवर कुँवर सखी सुठि लोना ॥
दो०—केहरि कटि पटपीत धर, सुखमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहिं, बिसरा सखिन अपान ॥

धरि धीरज इक सखी सयानी, सीतासन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरिकर ध्यान करेहू, भूप किसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे, सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे।
नखसिख देखि रामकी सोभा, सुमिरि पिताप्रन मन अति छोभा ॥
परवस सखिन लखी जब सीता, भयउ गहरू सब कहहिं सभीता।
पुनि आउब इहि बिरियाँ काली, अस कहि मन बिहँसी इकआली ॥
गूढ़गिरा सुनि सिय सकुचानी, भयउ बिलंब मातु भयमानी।
धरि बड़ि धीर रामउर आनी, फिर आपन प्रन पितुबश जानी ॥

दो०—देखन मिसु मृग बिहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि ॥

जानि कठिन शिवचाप बिसूरति, चली राखि उर स्यामल मूरति।
प्रभु जब जात जानकी जानी, सुख सनेह सोभागुन खानी ॥
परम प्रेमभय मृदु मसि कीन्ही, चारु चित्र भीतर लिखि लीन्ही।
गई भवानी भवन बहोरी, बंदिचरन बोली कर जोरी ॥
जय जय जय गिरिराज किशोरी, जय महेश मुख चन्द्र चकोरी।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाव वेद नहीं जाना ॥
भव भव विभव पराभव कारिनि, विश्व विमोह निस्व
वशविहारिनि ॥

दो०—पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेष।
महिमा अमित व कहि सकहि, सहस शारदा शेष ॥

सेवत तोहिं सुलभ फलचारी, वरदायिनी त्रिपुरारि पियारी।
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे, सुरनर मुनि सब होहिं सुखारे ॥

मोर मनोरथ जानहु नीके, बसहु सदा उरपुर सब ही के।
कीन्हेउँ प्रगट न कारनतेही, अस कहि चरन गहे बैदेही॥
बिनय प्रेम बस भई भवानी, खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसाद उर धरेउ, बोली गौरि हरष हिय भरेउ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी, पूरहिं मनकामना तुम्हारी।
नारद बचन सदा सुचिसाँचा, सो बर मिलिह जाहिं मन राँचा॥

ध०—मन जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो॥
यहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषित अली।
तुलसी भवानिहिं पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

सो०—जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरष न जाय कहि।
मंजुल मंगल मूल, बाम अङ्ग फरकन लगे॥

दो०—कानन रहेउ तड़ागइव, चक चकई सियराम।
रावन निसि बिछुरन भये, दुख बीते चहुँयाम॥

पर दुख हरन सोक दुख नाहीं, भा विषाद तिन्ह के मनमाहीं॥
हा गुनरवानि जानकी सीता, रूप सील व्रत नेम पुनीता॥
लछमन समुझाए बहुँभाँती, पूछत चले लताअरु पाती॥
हे खग मृग हे मधुकरश्रेनी, तुमदेखी सीता मृग नैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुपनिकर कोकिला प्रवीना॥
कुंदकली दाड़िम सुदामिनी, सरद कमल ससि उरग भामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा, गज केह निज सुनत-प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हर्षाहीं, नेकु न संक सकुच मन माही॥
सुनुजानकी तोहि बिनु आजू, हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहिजात अनख तोहिं पाहीं, प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं

दो०—मनि बिहीन फनि दीन जिमि, मीन हीन जिमि बारि।
तिमि व्याकुल भये लषन तहँ, रघुबरदास निहारि॥

रसखानि-खंड

(आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूँ तू न गई वहि ढैंया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया॥
कोऊ न काहु की कानि करैं कछु चोट कसो जु कस्यो जदुरैया।
गाईगो तान जमाईगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥)

तेरी गलीन में जो दिन ते निकसे मन मोहन गोधन गाबत।
जो ब्रज लोग सों कौन सी बात चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत॥
वे रस खानि जो रीझि है नेकु तो रीझि के क्यों बनवारी रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तौ निसंक ह्वै क्यों नहि अङ्क लगावत॥

(भोरपखा सिर ऊपर राखि हों गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकु बन गोधन ग्वारिन सङ्ग फिरौंगी॥
भावतो बोहि मेरे रसखानि सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरान धरौंगी॥)

फागुन लग्यो सखी जबतें तबतें ब्रज मण्डल धूम मच्यो हैं।
नारि नवेली बचै नहि एक बिशेष यहै सबै प्रेम अच्यो हैं॥
साँझ सकारे वही रसखानि सुरङ्ग गुलाल लै खेल रच्यो हैं।
को सजनी निलजी न भई अस कौन भट्ट जिहिंमान बच्यो हैं॥

आलम सेख-खंड

जा थल कीन्हों बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठो चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन तारसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्योकरैं।
नैनन में जो सदा बसते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

सेज समीप सखी रुचि दम्पति कुंज कुटी ब्रज भूपररी।
कवि 'आलम' केलि रची विपरीत मनोज लसै दृग दूपररी॥
तरसीरूह आनन ते श्रम बुन्द परै ते जसो मति सूपररी।
बरसै बरसाने की गोरी घटा नन्द गाँव के साँवरो उपररी॥

सत पत्र के पत्रनि सेज सजै मिलि सोवत कान्हर सँग लली।
पिय की भुजतीय की ग्रीव गही तिय की भुज पीय की ग्रीव रसी
कवि 'आलम' अग्र रोमावलि के जगै चौकी जराब की जोति भली
जुग जानु मेरू के बीच मनो धरिधीर कलंदिकी धार चली॥

कैधो मोर सोर तजि गयेरी अनत भाजि।
कैधो उत दादुर न बोलत हैं ए दई॥
कैधो पिक चातक महीप कहूँ मार डारयो।
कैधो बक पाँति उत अन्त गति ह्वै गई॥
'आलमक'है हो आली आजहूँ न आये मेरे।
कैधो उत रीति बिपरीति विधि ने ठई॥
मदन महीप की दोहाई फिरबे ते रही।
जूझि गए मेघ कैधो बीजूरी सती भई॥

धीर ते अधीर भई पीर नीर चीर भीजै।
सोचनि कुचनि पर लोचन बहत हैं॥
'आलम' अदेख ऐसे कैसे इहि भेस जीजै।
ऐसे ही उसास प्रान कैसे कै रहत हैं॥
कहा करौं माई मेरे प्रान मेरे हाथ नाहि।
प्रान नाथ साथ प्रान साथच ल्योई चहत हैं॥
पलन लगत पल कल नपरत सुनि।
आसी री ललन कालिह चलन कहत हैं॥

रंग भरी रस भरी सुन्दर सुगन्ध भरी,
सुख भरी पैन ऐन मैन मैनका सी ही।
दर्पण सी देह तैसी नेह की नवेली नई,
ब्रजबनितान ऐसी सुर पुर बासी है॥
आलम सुकबि लोने सोने के सरोज ही तैं,
फूल ही के भारे भरे पान की लतासी है।
चंदन चढ़ाय चारु चाँदनी सी छाय रही,
चन्द्रमा सी चाँदी सी चमक चञ्चलासी है॥

रात रन विष जे रहे हैं पति सन्मुख,
तिन्है बकसीस बकसी है मैं बिहँसिकै।
करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार,
कटि माहि किंकिनी रही है अति लसि के॥
'सेख'कहै आनन को आदर सो दीन्हो पान,
नयनन में काजर विराजै मन बसि कै।
परे वैरी बार ये रहे हैं पीठ पाछे,
ताते बार बाँधति हौ बार बार कसिकै॥)

जब ते गुपाल मधुबन को सिधारे माई,
मधुवन भयो मधु दानव विषम सों।
सेख कहै सारि का सिखण्ड खंजरीट सुक,
कमल कलेस कीन्ही कालिन्दी कदमसों॥
जामिनी बरन यह जामिनी में जाम जाम,
बधिवे को जुवति जन बैठीरी जम सों।
देह करि करक करेजी लीनौ चाहति है,
काग भई कोइला कगाई करै हम सौं॥

आए हो आज भले बनि मोहन सोहति मूरत मैन मई है।
आरस सों रस सों अनुराग सों रूपसों रीससों दीठ दई है॥
रावरे ओठन अंजन देखत 'मीरन' मोमति नेह नई है।
जानति हैं उह भावति और सो बोलन को मुख छाप दई हैं॥

पौढ़ि हुती पलिका पर में निशि ग्यान अरु ध्यान पिया मनलाए।
लागि गई पलकै पलसों पल लागत ही पल में पिय आए॥
ज्योंहि उठी उनके मिलवे को सुजागि परी पिय पासन पाये।
"मीरन" ओरतो सोयके खोबत हौ सखि प्रीतम जागि गमाए॥

केशव-खंड

नीके कै किंवार दैहौं द्वार-द्वार 'केसौदास'
मेरे घर आस-पास सूरजौ न धावैगो;
छिन में छवाय लैहौं उपर अटानि आज,
आँगन पटाय लैहौं जैसे मोहिं भावैगो।
न्यारे-न्यारे नापदान भूँदिहौं झरोखा जाल,
पाय है न पैड़ो पौन आवन न पावैगो;
माधव, तिहारे पीछे मोपहिं मरन मूढ़,
आवन कहत, सु तो कन पैंड़े आवैगो ?॥

('केसव' सरिता सकल मिलन सागर मन मोहै;
ललित लता लपटानि तरुन तन तरुबर सोहै।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन;
मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन।
इहि रीति रमन रमनीन सों रमन लगे मनभावने;
पियगमन करनकी को कहै गमन न सुनियत सावने॥

बन में वृषभान-कुमारि मुरारि रमैं रुचि सों रस-रूप-पिए;
कल कूजित पूजित काम-कला विपरीत रतीरति केलि किए।
मनिसोमित स्याम जराइ जरी अति चौकी चलैचल चारु हिए;
मखतूल के झूल झुलावत 'केसव' भानु मनौ सनि अङ्कलिए॥

'केसव' एक समै हरि, राधिका आसन एक लसे रस-भीने;
आनँदसों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन त्यों दुति दीने।
बाल के भाल में लाल विलोकत ही भरि लोचन लालन लीने;
सासन पीय सबासन सीय हुतासन में मनो आसन कीने॥

कानन के रँगे रंग, नैनन के डोलौ संग,
नासा अग्र रसना के रस ही समाने हौं;
और कहा कहौं गूढ़ मूढ़ हौ जू जानि जाहु,
'केसौदास' प्रौढ़ गढ़ नीके करि जाने हौं।
तन आन, मान आन, कपट-निधान कान्ह,
साँची कहौ मेरी आन काहे को डराने हौ;
के तो हैं बिकानी हाथ मेरे, हौं तुम्हारे हाथ,
तुम ब्रजनाथ, हाथ कौन के बिकाने हौ ?॥

चंचल न हूजै नाथ, अंचल न खैंचो हाथ,
सोवै नीके सारिकाउ, सुक तो सोवायो जू;
मंद करौ दीप-दुति, चंद मुख देखियतु,
दौरिकै दुराय आऊँ द्वार ते दिखायो जू।
मृगज, मराल-बाल बाहिरै बिडारि देउ,
भायो तुम्हें 'केसव' सु मोहूँ मन भायो जू;
छल के निवास ऐसे बचन-बिलास सुनि,
सौगुनौ सुरति हू ते स्याम सुख पायो जू॥

तोरि तनी, टकटोरि कपोलन, जोरि रहे कर हौं न रहौंगी;
पान खवाइ, पिआइ सुधा-रस, पाँइ गहे तस हौं न गहौंगी।
'केसव' चूक सबै बकसी, मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी;
कै मुख चूमन दे फिरि मोहिं, कै आपनी धाइ सों जाइ कहौंगी॥

सिखै हारी सखी, डरसे डरपाय हारी सेवकिनी,
दामिनि दिखाइ हारी निसि अधरात की;
कूकि-कूकि हारी रति, मारि-मारि हारयोमार,
हारी उर कीरति बिगत स्रम बात की।
दई निरदई, दई वाहि कहा ऐसी मति,

जरत ज्यौं रैनि-दिन ऐसे सम गात की;
कैसेहू न मानति मनाइ हारी 'केसौदास',
बोलि हारी कोकिला, बोलाइ हारी चातकी ॥

ब्रज की कुमारिका वै लीने सुक-सारिका,
पढ़ावैं कोक-कारिकानि 'केसव' सबै निबाहि;
गोरी-गोरी-भोरी-भोरी थोरी-थोरी बैसन की,
फिरैं देवता सी दौरी-दौरी चोरा चोरी चाहि,
बिन गुन तेरी आनि-भृकुटि कमान तानि,
कुटिल कटाच्छ-बान यहै अचरजु आहि;
एते मान ईठ ठीठ मरे को अडीठ मनु,
पीठि दै-दै मारति सो चूकति न एकौ ताहि ॥

पद्माकर-खंड

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीरा के हारन गंग तरंगन सी सुख देनी॥
पायन के रंग सो रँगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वति सेनी।
पैरै जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेनी॥

ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरईसी।
ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनईसी॥
ज्यों कुच त्यों ही नितम्ब चढ़े कछु ज्योंही नितम्ब त्यों चातुरईसी।
जानि न ऐसी चढ़ा चढ़ि में किहि धौं कटिबीचही लूटि लईसी॥

जाहि न चाह कहूं रति की सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यों पदमाकर आनन में रुचि कानन भौं हैं कमान लगी है॥
देत तिया न छुबै छतियाँ बतियान में तो मुसकान लगी है।
पीतम पान खवाइबे को परयङ्क के पास लों जान लगी॥

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निशा अधराति प्रमाने।
हौं पदमाकर भावति हौं निज भावत पै अबही मुहिं जाने॥
तौ अलबेली अकेली डरै किन क्यों डरौं मेरी सहाय के लानै।
है सखि संग मनोभव सो भट कान लों बान सरासन ताने॥

बैन सुधा के सुधासी हँसी बसुधा में सुधा की सटा करती है।
त्यों पदमाकर बारहिं बार सुबार बगारि लटा करती है॥
बीर बिचारे बटोहिन पै इक काज ही तौ यों लटा करती है।
बिज्जु छटासी अटा पै चढ़ी सुकटाछनि धालि कटा करती है॥

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै बृन्दाबन बीथिन बहार
बंसी बट पै।
कहै पदमाकर अखंड रासमंडल पै मण्डित उमड़ि महा कालिन्दी
के तट पै॥
धिति पर छान पर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाड़िली
के लट पै।
आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजुही
कन्हाई के मुकुट पै॥

जात हुती निज गोकुल में हरि आवैं तहाँ लखिकै मन सूना।
तासौं कहौं पदमाकर यों अरे साँवरे बावरे तैं हमैं छूना॥
आजधौं कैसी भई सजनी उतवा विधि बोल कठ्योई कहूँना।
आनि लगायो हियो सों हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछूना॥

अ चल के ऐंचे चल करती दृगचंल को चंचला तैं चंचल चलैंन
भजि द्वारे को।
कहै पदमाकर परै सी चौंक चुम्बन में छलनि छपावै कुच कुंभनि
किनारे को॥
छाती के छुवे पै परी रातीसी रिसाय गलबाँही किये करै नाहिं
नाहिं पै उचारे को।
हीकरति शीतल तमासे तुंग तीकरति सी करति रति में बसी
करति प्यारे को॥

(फाग के भीर अभीरनि त्यों गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाय करी मनकी पदमाकर उपर नाय अबीर की झोरी॥
छीन पितम्भर कम्मरतैं सुबिदा दई मीड कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुक्याय लला फिर आइयो खेलन होरी॥

कै रतिरंग थकी थिर ह्वै परयंक पै प्यारी परी सुख पाय कै।
त्यों पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै॥
बिन्दु रचे मेंहँदी के लसे कर तापर यों रह्यो आनन आयकै।
इन्दु मनों अरविन्द पै राजत इन्द्रबधून के बृन्द बिछाय कै॥

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिरहू बाग ना सुहात जो खुशाल
खुशबोही सों।
कहै पदमाकर घनेरे धन धाम त्योंही चैन ना सुहात चाँदनी
हूँ योग जोही सों॥
साँझ हूँ सुहात ना सुहात दिन माँझ कछु व्यापी यह बात सो
बखानत हों तोही सों।
रातिहु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात
काहू निरमोही सों॥

फूली फलबेली सी नवेली अलबेली बधू,
भूलत अकेली काम केली सी बढ़ती है।
कहै पदमाकर झमङ्की की झकोरन से,
चारों ओर सोर किङ्किनीन को कढ़ति है॥
उर उचकाइ मचकीन की मचामच सो,
लङ्कहि लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है।
रति बिपरीत की पुनीत परिपाटी सुतौ,
हौंसनि हिंडोरे की सुपाटी में पढ़ति है॥

गाइहौं मलारे और जनाइहौं हिये में छबी,
छाइहौं छिगुनि कुंज कुंजही के कोर मैं।
कहै पदमाकर पियाइ हौं पियाला मुख,
मुख सों मिलाइहौं सुगंध के झकोरे मैं,
नेह सरसाइ हौं सिखाइहौं जो सासन मैं,

पाइहौं परी सो सुख मैंन के मरोरे मैं।
उर उरझाइ हौं हिए सों हिए लाइ हौं,
भुलाइहौं कबैधों प्रान प्यारी को हिंडोरे मैं॥

प्रानन के प्यारे तनुताप के हरन हारे,
नंद के दुलारे ब्रजवारे डमहत हैं।
कहै पदुमाकर उरुझे उर अंतर यों,
अंतर चहेहूँ तेन अंतर चहत हैं,
नैनन बसे हैं अंग अंग हुलसे हैं रोम।
रोमनि रहे हैं निकले हैं को कहत हैं,
ऊधो वै गोविन्द कोई और मथुरा मैं यहाँ।
मेरे तो गोविन्द योंहि माहि मैं रहत हैं॥

पाँती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोविंद को,
श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ,
कहै पदुमाकर तिहारी छेम छिन छिन,
चाहियत प्यारे मन मुदित घने रहौ।
बिनती इती है कै हमेस हूँ हमैं तौ निज,
पायन की पूरी परिचारिका गने रहौ,
याही में मगन मन मोहन हमारो मन,
लगनि लगाय लाल मगन बने रहौ॥

दास-खंड

ये विधि जो विरहागि के बानसों,
मारत हौं तो इहै वर मांगौ।
जो पसु होऊँ तऊ मरि कै,
सहूँ पावरी ह्वै हरिन्के पग लागौं॥
दास पखेरुन में करौ मोर,
जुनंद किसोर प्रमा अनुरागौं।
भूषन कीजिए तौ बन मालहि,
जातें गोपाल हीं के हिय लागौं॥

झांझरियाँ झनकैंगी खरी खनकैगी चुरी तनिको तन तोरे।
दासजू जागतीं पास अली गन हाँस करैंगी सबै उठि भोरे॥
सौंह तिहारीं हौं भागिन जाँउगी आई हौं लाल तिहारेई धोरे।
केलि की रैन परी है घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे॥

दासज रास कै ग्वालि गई सब राधिका सोई रही रंग भूमैं।
गाढ़े उरोजन पै उरबीच सुजान को ऐंचि भुजान दुहूँ मैं॥
भोर भयो पिय सैन को सोनो न गेह को गोनो सकै क र दूमैं।
भीर बड़ी यै परै जिमि सोनों बनै न मँजावत राखत सूमैं॥

हौं तो कह्यो कछुबातैं करौगे प्रवीन बड़े बलदेव के भैया।
थे गुन जानती तौ यह सेजहि भूलि न सोवती वीर दोहैया॥
दास इतै पर फेरि बोलावत या अब आवति मेरी बलैया।
आवती हौं जो कहो करि सौंहें कि आज करैंगे न कालिकी नैया

चंद सो आनन मेरो विचारो तौ चंदहि देखि सिराओ हियोजू।
बिंब सो जौं अधरान बखानो तो बिंबहि को रस पीयो जिओजू॥

श्रीफल ही क्यों न अक्र मरौ जोपै श्रीफल मेरे उरोज कियोजू।
दी पति मेरी दियेसी है दासतौ जाऊँ हौं बैढि निहारो दियोजू॥

नीर के कारन आई अकेति यै भीर परे सँग कौन को लीजै।
ह्याऊँ न कोऊ गयो दिन सोऊ अकेले उठाय घरो पट भीजै॥
दास इतै गउ आन को ल्याय भलो जल छाँह को प्याइये पीजै।
एतौ निहोरो हमारो हरी घट ऊपर नेकु घरो धरि दीजै॥

मोहन आपनो रधिका को बिपरीत को चित्र विचित्र बनायकै।
दीठि बचाय सलोनी को आरसी मैं चमकाय गयो बहरायकै॥
घूमि घरीक मैं आय कह्यो कहा बैठी कपोलन चंदन लाय कै।
दर्पन त्यों तिय चाह्यो तहीं सिरखनाय रही मुसुकाय लजाय कै॥

नातै की गारी सिखाय कै सारी को पिंजरो लै पिया के कर दीने।
मैना पढो सुनते वह दासजू वार हजार वहै रढि लीनो॥
बूझति आली हँसौं हैं कहा कहैं होत खिसौं हैं लाल रसभीने।
आपु अनंद भरी हँसिबो करैं चंचल चारु दृगंचल कीने॥

मतिराम-खंड

कुंदन कौ रंगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई,
आँखिन मैं अलसानि, चितौन में मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लहै मुसकानि-मिठाई,
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई॥

नैक मंद मधुर कपोल मुसक्यान लागे,
नैक मंद गमन गयंदन की चाल भौ,
रंचक न ऊँचो लगो अंचल उरोजन के,
अंकुरनि बंक-दीठि नेक सो बिसाल भौ।
'मतिराम' सुकबि रसीले कछु बैन भए,
बदन सिंगार-रस बेलि-आलबाल भौ,
बाल-तनु-जोबन-रसाल उलहत सब,
सौतिन कै साल भौ निहाल नंदलाल भौ॥

खेलन चोर-मिहीचनि आजु, गई हुती पाछिले द्यौस की नाई,
आली कहा कहौं एक भई 'मतिराम' नई यह बात तहाँई
एक हि भौन दुरे इकसङ्ग ही अङ्ग सों अङ्ग छुवायो कन्हाई
कंप छुह्यो घनस्वेद बह्यो, तनुरोम उठ्यो, अँखियाँ भरि आईं।

कानन लौं लागे, मुसकान प्रेम-पागे, लौने,
लाज भरे लागे लोल लोचन अनंग ते,
भारु धरि भुजनि डुलावति चलति मंद,
औरैं ओप उलहत उरज उतंग ते
'मतिराम' जोबन-पवन की झकोर आय,
बढ़िकै रस तरल तरंग ते,

पानिप अमल की झलक झलकन लागी,
काई-सी गई है लरिकाई कढ़ि अङ्गते ॥

साथ सखी के नई दुलही को, भयो हरि कौ हियो हेरि हिमंचल;
आय गए 'मतिराम' तहां घरु, जानि इकंत अनंद ते चंचल।
देखत ही नंदलाल को बाल के, पूरि रहे अँसुवानि दृगंचल;
बात कही न गई सु रही गहि, हाथ दुहू सों सहेली को अंचल ॥

(केलि कैं राति अघाने नहीं, दिन ही मैं लला पुनि घात लगाई;
प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयौ, भीतर बैठिकैं बात सुनाई।
जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरे 'मतिराम' बुलाई;
कान्ह के बोल मैं कान न दीनो, सो गेह की देहरी पै धरि आई ॥

चित्र मैं बिलोकत ही लाल को बदन बाल,
जीते जिहि कोटि चंद सरद-पुनीन के।
मुसकानि अमल कपोलन मैं रुचि वृंद,
चमकैं तरयोननि की रुचिर चुनीन के ॥
प्रीतम निहारयो बाँह गहत अचानक ही,
जामैं 'मतिराम' मन सकल मुनीन के।
गाढ़े गही लाज-मैन, कंठ छ्वै फिरत बैन,
मूल छ्वै फिरत नैन-बारि बरुनीन के ॥

प्रान-पिया मनभावन संग, अनंग-तरंगनि रंग पसारे;
सारी निसा 'मतिराम' मनोहर, केलि के पुञ्ज हजार उघारे।
होत प्रभात चल्यौ चहै प्रीतम, सुन्दरी के हिय मैं दुख भारे;
चंद-सौ आनन, दीप-सौं दीपति, स्याम सरोज-से नैन निहारे ॥

कोऊ नहीं बरजै 'मतिराम' रहो, तित ही जित ही मन भायो;
काहेकौं सौंहैं हजार करौ तुम, तौ कबहूँ अपराध न ठायो।

सोवन दीजै, न दीजै हमें दुख, यों ही कहा रसवाद बढ़ायो;
मान रहोई नहीं मनमोहन ! मानिनी होय सो मानैं मनायो ॥

(प्रीतम आए प्रभात प्रिया-घर, राति रमैं रति-चिह्न लिए हीं;
बैठि रही पलका पर सुन्दरि, नैन नवाय कें धीर धरें हीं।
बाँह गहैं 'मतिराम' कहैं न रही रिस मानिनी के हठ केंही;
बोज़ी न बोल कछू सतरायकें, भौंह चढ़ाय तकी तिरछौंहीं ॥)

(बैठी एक सेज पै सलोनी मृगनैनी दोउ,
आय तहाँ प्रीतम सुधा-समूह बरसै;
कबि मतिराम ढिग बैठे मनभावन जू,
दुहुँन के हीय-अरबिंद मोद सरसै।
आरसी दै एक सों कह्यो यों निज मुख देखौ,
जामें बिधु-बारिज-बिलास बर दरसै,
दरप-सौं भरी वह दरपन देख्यो जौलौं,
तौलौं प्रानप्यारी के उरोज हरि परसै ॥)

क्यों इन आँखिन सों निरसङ्क ह्वै, मोहन को-पानिप पीजै;
नेकु निहारैं कलङ्क लगै इहि गाँव बसे कहौ कैसे के जीजै।
होत रहै मनयों 'मतिराम' कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै;
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरुह्वै, मुरली अधरारस लीजै ॥

लेन गई हुती बागन फूल अँध्यारी लखें डर बाढ्यो महाई;
रोम उठे, तन कंप छुटे,'मतिराम' भई श्रम की सरसाई।
बेलिन में उरझी अङ्गियाँ, छतियाँ अति कंटक के छत-छाई,
देह में नेक सँभार रह्यो न यहाँ लगि भाजि मरू करि आई ॥

आई है निपट साँझ गेयाँ गई घर-माँझ,
ह्वैं ते दौरि आई मेरो कह्यो कान्ह कीबिए,

हौंतो हौं अकेली और दूसरो न देखियत,
बन की अँधेरी में अधिक भय भीजिए।
कबि 'मतिराम' मनमोहन सौं पुनि-पुनि,
राधिका कहत बात साँची यै पतीजिए,
कब की हौं हेरति न हेरे हरि ! पावति हौं,
बछरा हिरानौ सो हिराय नैक दीजिए॥

(आई हौ पायँ दिवाय महावर, कुंजनतैं करिकैं सुख-सैनी;
साँबरे आजु सँवारयो है अञ्जन, नैनन को लखि लाजतिऐनी।
बात के बूझत ही 'मतिराम' कहा करिए यह भौंह तनैनी;
मूँदि न राखत प्रीति भटू ! यह मूँदी गुपाल के हाथ की बैनी,)

मोहन तैं कछु घोसन मैं 'मतिराम' बढ़्यो अनुराग सुहायो;
बैठी हुती तिय मायके मैं ससुरारि को काहू सँदेसो सुनायो।
नाह के ब्याहकी चाह सुनि हिय माँहि उछाह छबीली के छायो;
पौढ़ि रही पट ओढ़ि अटा दुख कोमिस कै सुख बाल छिपायो॥

(बेलिन सों लपटाय रही है, तमालन की अवली अति कारी;
कोकिल-केकी-कपोतन के कुल, केलि करैं जहाँ आनंद भारी;
सोच करो जिन होहु सुखी 'मतिराम' प्रबीन सबै नर-नारी;
मंजुल-बंजुल-कुञ्जन में धन, पुंज सखी ! ससुरारि तिहारी॥

सो मनमोहन होत लटू मुख, जाके भटू ! बिधु की छबि छाजै,
खोल के नैनन देखैं जो नेक तो, स्याम सरोज-पराजय साजै।
जो बिहँसै मुख सुंदर तो 'मतिराम' बिहान को बारिज लाजै;
बोले अली भटु मंजुल बोलतो, कोकिल-बोलनि को मदभाजै॥

ह्याँ केलि मोहन सों 'मतिराम' सुकेलि करी अति आनँदवारी;
तेई लता-द्रुम देखत दुःख, चले अँसुवा अँखियान ते भारी।

आवति हौं जमुना-तट कौं, नहिं जानि परै बिछुरे गिरिधारी;
जानति हौं सखि आवन चाहत, कुञ्जत तै कढ़ि कुञ्जबिहारी।।
रावरे नेह को लाज तजी अरु गेह के काज सबै बिसराए;
डारि दिए गुरु लोगन को डर, गाम चवाई मैं नाम धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम, तो 'मतिराम' सबै बिसराए;
कोऊ कितेक उपाय करौ कहुँ, होत हैं आपने पीउ पराए।।

सकल सिंगार साज संग लै सहेलिन कों,
सुंदरि मिलन चली आनंद के कंद कों;
कबि 'मतिराम' मग करति मनोरथनि,
पेख्यो परजङ्क पै न प्यारे नँदनद कों।
नेह ते लगी है देह दाहन दहत गेह,
बाग को बिलोकि द्रुम-बेलिन के वृंद कों;
चंद को हँसत तब आयो मुखचंद अब,
चंद लाग्यो हँसन तिया के मुखचंद कों।।

जमुना के तीर बहै सीतल समीर तहाँ,
मधुकर करत मधुर मन्द सोर हैं;
कबि 'मतिराम' तहाँ छबि सौं छबीली बैठी,
अङ्गन तें फैलत सुगंध के झकोर हैं।
पीतम बिहारी की निहारिबे को बाटरोसी,
चहूँ ओर दीरघ दृगनि करी दौर हैं;
एक ओर मीन मनो, एक ओर कञ्ज-पुञ्ज,
एक ओर खंजन, चकोर एक ओर हैं।।

बारनि धूपि अङ्गारनि धूप कैं धूम-अँध्यारी पसारी महा है;
आनन-चन्द समान उगो मृदु, मंद हँसी जनो जोन्ह-छटा है?
फैलि रही 'मतिराम' जहाँ-तहाँ, दीपति दीपनि की परभा है;
लाल! तिहारे मिलाप को बालने आजु करी दिन मेंही निसा है।।

आपने हाथ सों देत महावर, आप ही बार सँवारत नीके;
आपुन हीं पहिरावत आनि कैं, हार सँवारि कै मौरसिरी के।
हौं सखी लाजनि जात मरी 'मतिराम' सुभाव कहा कहों पीके;
लोग मिलैं, घर घैरु करैं, अबही ते ये चेरे भए दुलही के॥

लालन मैं रति नायक तैं सुभ, सुन्दरता रुचि कुञ्जन पेखी;
बाल में त्यों 'मतिराम' कहै, रति तें अति रूप कला अवरेखी।
सामुहि बैठी लखै इक सैज में बोल अली सुख प्रीति बिसेखी;
भाल में तेरे लिखी बिधि सों, यह लाल की मूरति लाल में देखी॥

बैठि रहें 'मतिराम' लला घर, भीतर साँझहि तैं अनुरागी;
बानिक सौं बनि चारु सिंगारनि, आई सुहागिनि प्रेम सौं पागी।
प्यारे कह्यो हँसिआइहि सेजहि, प्यारीकीजोति विलासनि जागी;
नैन नवाय रही मुसकाय कै, हार हिए को सँवारन लागी॥

सहज सुबास जुत देह की दुगुन दुति,
दामिनी दमक दीप केसरि कनक तैं;
'मतिराम' सुकवि सरस सुकुमार अंग,
सोहत सिंगारु चारु, जोबन-बनक तैं।
सोयबे को सेजचली प्रानपति प्यारे पास,
जगत जुन्हाई जोति हँसन तनक तैं;
चढ़त अटारी गुरु लोगन की लाज प्यारी,
रसना दसन दाबै रसना-झनक तैं॥

अंगन मैं चंदन चढ़ाय घनसार सेत,
सारी छीर-फेन की-सी आभा उफनाति है;
राजत रुचिर रुचि मोतिन के आभरन,
कुसुम-कलित केस सोभा सरसाति है।

कवि 'मतिराम' प्रानप्यारे सौं मिलन जात,
करि कैं मनोरथनि मृदु मुसकाति है;
होति न लखाई निसि-चंद की उज्यारी मुख,
चंद की उज्यारी तन छाँहौं छिपि जाति है॥

साँझ ही सिंगार सजि प्रानप्यारे पास जाति,
बनिता बनक बनी बेली-सी अनंद की;
कबि 'मतिराम' कल किंकिनी की धुनि बाजै,
मन्द मन्द चलनि विराजत गयंद की।
केसरि रँग्यो दुकूल, हाँसी में झरति फूल,
केसनि मैं छाई छबि फूलन के वृंद की,
पीछे-पीछे आवत अँधेरीसी भँवर-भीर,
आगे आगे फैलत उजारी मुख चंद की॥

जा दिन तैं चलिबे की चरचा चलाई तुम,
ता दिन तैं वाके पियराई तन छाई है;
कहै 'मतिराम' छोड़े भूषन, बसन, पान,
सखिन सौं खेलनि, हँसनि बिसराई है।
आई ऋतु सुरभि, सुहाई प्रीति वाके चित्त,
ऐसे मैं चलौ तो लाल रावरी बड़ाई है;
सोवत न रैन-दिन, रोवति रहति बाल,
वृझे तैं कहत मायके की सुधि आई है॥

आए बिदेस तैं प्रानपिया, 'मतिराम' अनन्द बढ़ाय अलेखै;
लोगन सौं मिलि आँगन बैठि, घरीही-घरी सिगरो घर पेखै।
भीतर भौन के द्वार खरी, सुकुमारि तिया तन-कंप बिसेखै;
घूँघट के पट ओट दिए, पट ओट किए पिय को मुख देखै॥

नागर बिदेस में बिताय बहु दोस आयो,
नागरी के हिय में हुलासन की खान की;
कवि 'मतिराम' अङ्क भरत मयङ्क-मुखी,
नेह सरसाय मोही मति सुखदान की।
सुबरन बोलि कैं बतावति है सुबरन,
हीरन जनावति है छबि मुसकानि की;
आँखिन तैं आनन्द के आँसू उमगाय प्यारी,
प्यारे को दिखावति सुरति सुकतान की॥

गुच्छनि के अवतंस लसैं सिर, पच्छन अच्छ किरीट बनायें;
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव सौं मतिराम सुहायो।
गुजनि के उर मंजुल हार सुकुंजनि तैं कढ़ि बाहर आयो;
आज को रूप लखैं नँदलाल को, आजहि नैननि को फल पायो॥

क्यों हू नहीं बिसरैं निसि-बासर, मंद हँसी मुखचंद उज्यारी,
त्यों हीं दिपै अति नेह सौं देह की, दीप कला समदीपति न्यारी।
तेरिये जोति जगै हिय-भीतर, आवत और न नारि-अँध्यारी,
नैनन हूँ अरु बैनन हूँ तन हूँ-मन हूँ कौ तुही अति प्यारी॥

मोनैं तो कछू न अपराध परयो प्रान प्यारी!
मान करि रही यौं ही काहे को अरस तैं?
लोचन-चकोर मेरे सीतल हैं होत तेरे,
अरुन कपोल मुखचंद के दरस तैं।
कहे 'मतिराम' उठि लागु उर मेरे किन,
करत कठोर मन अँसुवा-बरस तैं;
कोप तैं कटुक बोल बोलते हैं तऊ मोकौं,
मीठे होत अधर-सुधारस-पास तैं॥

बरज्यो न मानत हौ बार-बार बरज्यो मैं,
कौन काम मेरे इत भौन मैं न आइए;

लाज को लेस, जग-हांसी को न डर मन,
हँसत-हँसत आन बात न बनाइए।
कबि 'मतिराम' नित उठि कलकानि करो,
नित झूँठी सौंहैं करो, नित बिसराइए;
ताके पग लागो निस जागि जाके उर लागे,
मेरे पग लागि उर आगि न लगाइए॥

नँदलाल गयो तित ही चलिकै, जित खोलति बाल अलीगन मैं;
तहाँ आपु ही मूँदे सलोनी के लोचन, चोरमिहीचनि खेलन मैं।
दुरिबे को गई सिगरी सखियाँ, 'मतिराम' कहै इतने छिन मैं;
मुसकाय कै राधिका कंठ लगाय, छिप्यौ कहूँ जाय निकुञ्जन मैं॥

प्यारे पगे बचन-पियूष पान करि करि,
उँमगि-उँमगि तिय आनँद बिसेखि हौं;
कबि 'मतिराम' तन-तपनि बुझाय जैहै,
तब निज जनम सफल करि लेखि हौं।
हीतल को सीतल करन चारु चाँदनी-सी,
मंद मृदु मुसकानि अनिमिख पेखि हौं;
ह्वै है तब निसा मेरे लोचन-चकोरनिको,
जब वाको आनन अमल इन्दु देखि हौं॥

गौने के द्यौस सिंगारन को 'मतिराम' सहेलिन को गनु आयौ,
कञ्चन के बिछुवा पहिरावत, प्यारी सखी परिहास बढ़ायौ।
"स्रौन समीप सदा पतिके बजै" यौं कहि के पहिले पहिरायौ,
कामिनि कौल चलावनि कौं, कर उँचो कियौ पै चल्यौन चलायौ॥

चरन धरैं न भूमि बिहरैं तहाँई जहाँ,
फूले-फूले फूलनि बिछायौ परजंक है;
भार के डरनि सुकुमारि चारु अङ्गनि मैं,
करनि न अङ्गराग कुंकम को पंक है।

कबि 'मतिराम' देखि बातायन बीच आयो,
आतप मलीन होत बदन मयंक है;
कैसैं वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै,
बिजन बयारि लागैं लचकति लंक हैं॥

गहि हाथ सौं हाथ सहेली के साथ मैं, आवत ही वृषभान लली;
'मतिराम' सुबास तैं आवत नीरे, निवारत भौंरन की अवली।
लखि कैं मनमोहन कौं सकुची, करयौ चाहत आपनी ओट अली;
चित चोरि लियो दृग जोरि तिया, मुख मोरि कछू मुसकाय चली॥

चंद्रमुखी हाँसी मैं चमेली की लता–सी होति,
चंपक–लता–सी अङ्ग जोति को धरति है;
कबि 'मतिराम' तेरे अंग की सुबास लहै,
कौन बेली ऐसी हिए जानि न परति है।
नेंसुक निहारे ते नवेली नैन को रन सौं,
ऐसी अदभुत की कलाति आचरति है;
ललित ललाम स्याम रसिक रसाल को,
कदंब मुकुलित के कुलानि सो करति है॥

(केलि कै सकल राति प्रात उठि अंगिराति,
नींद भरे लोचन जुगल बिलसत हैं;
लाजनि तैं अंगनि दुरावति है बार बार,
खैंचि करि बसन बिहारी बिहँसत है।
कबि 'मतिराम' आई आलस जँभाई मुख,
ऐसी मन भावती की छबि सरसति हैं;
अरुन उदोत मनो सोभा ने सरोवर मैं,
सोभा मानि सोभा को सरोज निकसत हैं॥)

प्यार पगी पगरी पिय की घर भीतर आपने सीस सँवारी,
ऐसे मैं आँगन तैं उठिकैं तहाँ आय गयो 'मतिराम' बिहारी।
देखि उतारन लागी पिया पिय सौंहनि सौं बहुरचो न उतारी;
नैन नवाय लजाय रही उर लाय लई मुसकाय पियारी।'

किंकिनी कलित कल नूपुर ललित रव,
गौन तेरो देखि कैं सकतु करि गौन को ?
मृदु मुसकानि मुखचंद चारु चाँदनी-सों;
राख्यो कैं उज्यारो अभिराम द्वार भौन को।
सहज सुभावनि सौं भौंहनि के भावनि सौं,
हरति हैं मन 'मतिराम' मनरौन को;
रूप मद छकी आजु छवि सौं छबीली देति,
तिरछी चितौनि मैन बरछी-सी कौन को॥

फूलि रहे द्रुम बेलिन सौं मिलि, पूरि रहीं अँखियां रतनारी;
मोहि अकेली बिलोकि यहाँ, कछु और ही-सी भई दीठि तिहारी।
जैसी हुती हमसौं तुमसों अब, होयगी ऐसिये प्रीति निहारी;
चाहत जो चित में हित तो जिन बोलिए कुंजन बीच बिहारी॥

धुरवानि की धावनि मानो अनंग की तुंग धुजा फहरान लगी;
नभमंडल हू छिति मंडल हू चपला की छटा छहरान लगी।
'मतिराम' समीर लगैं लतिका, बिरही बनिता थहरान लगी;
परदेस में पीव संदेश न पायो पयोद घटा घहरान लगी॥

देव-खंड

आँखिन आँखि लगाए रहैं, सुनिए धुनि कानन को सुख कारी;
'देव' रही हिय मैं घर-कै न रुकै निसरै बिसरै न बिसारी।
फूल मैं बासु ज्यों मूल सुबासु की, है फलि-फूलि रही फुलवारी;
प्यारी उज्यारी हिये भरि पूरि, सु दूरि न जीवन मूरि हमारी ॥

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनो लोक बूड़ि गए एक संग मैं।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चितभंग मैं ॥
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि,
जंबू जल बुंद जमुना जल तरंग में;
योंहीं मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग मैं ॥

'देव' न देखति हौं दुति दूसरी देखे हैं जा दिन ते ब्रजभूप मैं,
पूरि रही री वही धुनि कानन आन न आनन ओप अनूप मैं।
ये अँखियो सखियाँन हमारी जो जाय मिलीं जल-बुंद ज्यौं कूपमैं,
कोटि उपाइ न पाइए फेरि समाइ गई रँगराई के रूप मैं ॥

जागत-जागत खीन भई अरु लागत संग सखीन को भारो;
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसे-बीस बिसारो।
प्यौ-सुधि द्यौस गँवावति 'देवजू जामिनि जाम मनौ जुग चारो;
नीरज नैनी निहारिए नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥

रीझि-रीझि, रहसि-रहसि, हँसि-हँसि उठै,
साँसैं भरि, आँसू भरि, कहत दई-दई;
चौंकि-चौंकि, चकि-चकि, उचकि-उचकि 'देव'
जकि-जकि, बकि-बकि परत बई-बई।
दुहुन को रूप-गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई-नई;
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधिकामै,
राधा मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई॥

आपुस मैं रस मैं रहसैं बहसैं बनि राधिका कुञ्ज बिहारी;
स्यामा सराहत स्यामकि पागहि स्याम सराहत स्यामा किसारी।
एक हि दर्पन देखि कहै तिय, नीके लगौ पिय, प्यौ कहै प्यारी;
'देवजू' बालम बाल को बादु बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी॥

(कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिन, कलंकिन, कुनारी हौं;
कैसो परलोक, नरलोक, बरलोकन मैं,
लीन्हों मैं अलोक लोक-लीकन ते न्यारी हौं।
तन जाहि मन जाहि, देव गुरुजन जाहि,
जीव क्यों न जाहि, टेक टरति न टारी हौं;
बृंदावनवारी बनवारी के मुकुट-पर,
पीत-पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥)

मोहिं तुम्हैं अन्तरू गनैं न गुरजन, तुम,
मेरे हौं तुम्हारी पै तऊन-पघिलत हौ;
पूरि रहे या तन-में मन-मैं न आवत हौ,
पञ्च पूँछि देखे कहूँ काहू ना हिजत हौ।

ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत न दिखाई 'देव',
गातन की ओट बैठे बातन गिलत हौ;
ऐसे निरमोही सदा-मोही-मैं बसत अरु,
मोही-ते निकरि फेरि मोंही न मिलत हौ ॥

रावरो रूप रह्यो भरि नैननि, बैननि के रस सों श्रुति सानों,
गात में देखत गात तुम्हारेई, बात तुम्हारिए बात बखानों।
ऊधो, हहा हरि सो कहियो, तुम हौन इहाँ, यह हौं नहिं मानों,
या तन ते बिछुरे तो कहा मन-ते अनते जु बसो तब जानों ॥

जौं न जी-मैं प्रेम, तब कीजै ब्रत-नैम, जब,
कञ्ज-मुख भूलै तब संजम बिसेखिए;
आस नहीं पी-की, तब आसनहीं बाँधियत,
सासन के साँसन को मूँदि पाँति पेखिए।
नख ते सिखा लौं सब स्याम मई बाम भई,
बाहिर ह्वै भीतर न दूजो 'देव' देखिए;
जोग-करि मिलैं जो बियोग-होय बालम, जु,
ह्याँ न हरि होयँ तब ध्यान-धरि देखिए ॥

(जोगहि सिखै हैं ऊधौ जो गहि-कै हाथ हम,
सो न मन हाथ, ब्रजनाथ साथ कै चुकीं;
'देव' पञ्चसायक नचाय खोलि पञ्चन मैं,
पंचहू करनि पंचामृत सो अचै चुकीं।
कुल-बधू ह्वै कै हाय कुलटा कहाई अरु,
गोकुल मैं, कुल मैं, कलंक सिर लै चुकीं;
चित होत हित न हमारे नित और सो तौ,
वाही चित चोरहि चितौत चित्त दै चुकी ॥)

मोही मैं छिपे-हौ मोहिं छवावत न छाँहौ, तापै,
छाँह भए डोलत इते पै मोहिं धरि हो;
मच्छ सुनि, कच्छप, बराह, नरसिंह सुनि,
बामन, परसुराम, रावन-के-अरि हौ।
'देव' बलदेव, देव-दानव न पावैं भेव,
को हौ जू कहौ जू जो हिये की पीर हरि हौ?
कहन पुकारे प्रभु करुना निधान कान्ह,
कान-मूँदि बोध ह्वै कलंकी काहि करि हौ?॥

हौं हीं ब्रज, बृंदावन मोही मैं बसत सदा,
जमुना तरंग स्यामरंग अवलीन की;
चहूँ ओर सुंदर सघन बन देखियत,
कुञ्जनि मैं सुनियत गुंजनि अलीन की।
बंसीबट-तट नटनागर नटत मो मैं,
रास के बिलास की मधुर धुनि बीना की;
भरि रही भनक बनक ताल-तानन की,
तनक-तनक तामैं झनक चुरीन की॥

बैठी सीसमंदिर मैं सुंदरि सबारही की,
मूँदि कै किंवार 'देव' छबि सों छकति है;
पीत पट, लकुट, गुकुट, बनमाल धरि,
बेष करि पी-को प्रति बिंब मैं तकति है।
होति न निसंक, उर अंक भरि भेंटिबे को,
भुजनि पसारति, समेटति, जकति है;
चौंकति, चकति, उचकति, चितवति, चहूँ,
भूमि ललचाति, मुख चूमि न सकति है॥

'देव' मैं सीस बसायो सनेह सों, भाल मृगन्नद बिंद कै भाख्यो;
कंचुकी मैं चुपर्‌यो करि चोवा, लगाय लियो उर सों अभि लाख्यो।
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार के चाख्यौ;
सांवरे लाल को साँवरो रूप में नैननि-को कजरा करि राख्यौ॥

तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि,
हारी पाँय परि-परि तऊ तैंन की सँभार;
ललन विलोके 'देव' पलन लगाए तब,
यों कल-न-दीनी तैं छलन उछलनहार,
ऐसे निमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई,
आपु बिधि बूड़्यो माँझा बधा-सिंधु निराधार;
एरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हे, अब,
ए कै बार दैकै तोहिं मूँदि मारौं एक बार॥

ना बिन टरत टारे आँखि न लगत पल,
आखिन लगेरी स्याम सुंदर सलौन-से,
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस,
भरि-भरि रूप लेत लोचन अपौन-से।
एरी कहु कों हो, हौं, सु को हौं, कहा कहतिहौं,
कैसे बन-कुंज 'देव' देखियत भौन से;
राधे हौ सदन बैठी, कहती हौ कान्ह कान्ह,
हा-हा कहि कान्ह वे कहाँ हैं, को हैं, कौन से॥

सखी के सकोच गुरु-सोच मृग लोचनि,
रिसानी पिय सों जु उन नेंकु हँसि छुयोगात;
'देव' वे सुभाय मुसक्याय उठि गए, यहि,
सिसिकि-सिसिकि निसि खोई रोयपायो प्रात।

कौन जानै बीर बिन-बिहारी बिरह-बिथा,
हाय-हाय करि पछिताय न-कछू सोहात;
बड़े बड़े नैननि ते आँसू भरि-भरि ढरि,
गोरो गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात॥

कान्हभई वृषभानु सुता भई, प्रीति नई उनई जिया जैसी;
जानै को 'देव' बिकानी-सी डोलै, लगै, गुरु लोगन देखे अनैसी।
ज्यौं ज्यौं सखी बहरावनि बातति, त्यौं त्यौं बकै वह बावरी-ऐसी;
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि, काह्न की बंसी बजाई मैं कैसी॥

बिहारी-खंड

बतरस लालच लाल की,
मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हँसै,
दैन कहै नटि जाय॥

पत्राही तिथि पाइये,
वा घर के चहुँपास।
नित प्रति पून्यो ही रहत,
आनन ओप उजास॥

पहिर न भूषन कनके के,
कहि आवत यहि हेत।
दर्पन कैसे मोरचे,
देह दिखाई देत॥

राति-द्यौस हौसे रहै,
मान न ठिक—ठहराय;
जेतो औगुन ढूँढ़िए,
गुनै हाथ—परि—जाय॥

छुटी न सिसुता की झलक,
झलक्यो जोबन अंग;
दीपति देह दुहून मिलि,
दिपति ताप-ता रंग॥

अपने अंग के जानि कै,
जोबन—नृपति प्रबीन;

स्तन, मन, नैन नितंब को,
बड़ो इजाफा कीन ॥
ज्यों-त्यों जोबन जेठ-दिन,
कुचमिति अति अधिकाति;
त्यों-त्यों छन-छिन कटि-छपा,
छीन परति नित जाति ॥
छला छबीले-लाल को,
नवल नेह लहि नारि;
चाहति, चूमति लाय-उर,
पहिरति, धरति उतारि ॥
अपनी-गरजन बोलियत,
कहा निहोरो तोहि;
तू प्यारो मो-जीय को,
मो-जिय प्यारो मोहि ॥
मन्जन करि खन्जन-नयनि,
बैठी ब्यौरति बार;
कच अँगुरिन-बिच दीठिदै,
चित वति नंदकुमार ॥
कहा कुसुम की कौमुदी,
कितक आरसी जोति;
जाकी उजराई लखे,
आंखि ऊजरी-होति ॥
सघन कुंज घन घन तिमिर,
अधिक अधेरी राति;
तऊ न दुरि हैं स्याम यह,
दीप-सिखा-सी जाति ॥

इन अँखियाँ दुखियान को,
सुख सिर ज्योई नाहिं;
देखे-बनै न देखिबो,
बिन देखे अकुलाहिं ॥
जस-अपजस देखत नहीं,
देखत स्यामल-गात;
कहा-करौं लालच-भरे,
चपल नैन चलि-जात ॥
लाज-लगाम न मान हीं,
नैना मो बस नाहिं;
ये मुँह जोर-तुरंग-लौं,
ऐंचत-हू चलि-जाहिं ॥
क्यों बसिए क्यों निबाहिए,
नीति-नेह-पुर नाहिं;
लगालगी लोयन-करैं,
नाहक मन बँधि-जाहिं ॥
जहाँ-जहाँ ठाढ़ो लख्यो,
स्याम-सुभग सिरमौर;
बिनहूँ उन छिन गहि रहत,
दृगन अजौं वह ठौर ॥
सघन कुंज, छाया सुखद,
सरसिज-सुरभि समीर;
मन ह्वै-जाति अजौं वहै,
उहि यमुना के तीर ॥
सहज सचिक्कन, स्याम रुचि,
सुचि सुगंध सुकुमार;

गनत न मनपथ अपथ लखि,
बिथरे सुथरे बार ॥
भीने—पट मैं झल मली,
झलकति ओप अपार;
सुर तरू की मनु सिंध-मैं,
लसी सपल्लव—डार ॥
भाल लाल—बेंदी छए,
छुटे—बार छबि देत;
गह्यो राहु अति-आहु करि,
मनु ससि—सूर समेत ॥
जोग—जुगति सिखए सबै,
मनो महा मुनि मैन;
चाहत पिय अद्वैतता,
सेवत कानन नैन ॥
भूषन—भार सम्हारि है,
क्यों यह—तन सुकुमार;
सूधे पांय न परत धरि,
सोभा ही के भार ॥
मिलि पर छाहीं जोन्हसों,
रहे दुहुन के गात;
हरि, राधा इक संग ही,
चले गलिन में जात ॥
कपट सतर भौं हैं करी,
मुख अनखौं हैं बैन;
सहज हँसोहैं जानिकै,
सोहैं करति न नैन ॥

नैना नेक न मान हीं,
कितो कह्यो समुझाय,
तन-मन हारे-हू हँसैं,
तिनसों कहा बसाय ?
रहैं निगोड़े नैन ठिग,
गहैं न चेत अचेत;
हौं कसु-कै रिस को करौं,
ये निसुके हँसि—देत ॥
पलनु—प्रगटि बरनीनु—बढ़ि,
नहिं कपोल ठहरात;
अँसुवा परि-छतियाँ छिन कु,
छन छनाथ छपि—जाति ॥
स्याम—सुरति करि राधिका,
तकति तरनिजा—तीर;
अँसुवनि करति तरोस को,
खिनक खरो हौं नीर ॥
हौं ही बौरी बिरह बस,
कै बौरो सब गाँव;
कहा जानि ये कहत हैं,
ससिहि सीतकर नाँव ॥
रंगराती राते हिए,
पाती लिखी बनाय:

पाती काती बिरह की,
छाती रही लगाय ॥
बाम बाहु फरकत मिलैं,
जो हरि जीवन मूरि;
तौ तोहीं सौं भेंटि हौं,
राखि दाहिनी दूरि ॥
केसरि-मोती धन्य तुहि,
को पूछै कुल-जाति;
पीवो करि तिय-अधर को,
रस निधरक दिन-राति ॥

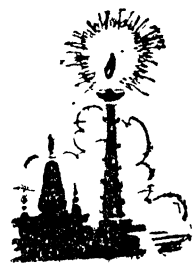

भारतेन्दु-खंड

मन मोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आसुन सों सदा धोवती हैं।
हरिचंद जू प्रेम के फंद परी,
कुल की कुल लाजहि खोवती हैं॥
दुख के दिन कों कोऊ भांति बितै,
बिरहागम रैन संजोवति है।
हमहीं अपुनी दशा जानैं सखी,
निसि सोवती हैं किधौं रोवती है॥

हौं तो याही सोच मैं बिचारत रही काहें,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है।
त्यौंही हरिचंद जू वियोग ओ संयोग दोउ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत हैं॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,
तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसत ताहि,
आरसी मैं रैन दिन देखिवो करत है॥

जग जानत कौन है प्रेम बिथा,
केहि सों चरचा या वियोग को कीजिये।
पुनि को कही मानै कहा समुझै,
कोऊ क्यौं बिन बात की रारहि लीजिये॥

नित जो हरिचंद जू बीतै सहैं,
बकि कै जग क्यौं परतीतहि छीजिये।
सब पूछत मौन क्यों बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिये॥

पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू,
क्यौं चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति,
निबाहन को क्यौं कलाम कियो॥
हरिचन्द भये निरमोही इते निज,
नेह को यों परिनाम कियो।
मनमोहि जो तोरन ही की हुती,
अपनाइ के क्यों बदनाम कियो॥

जिय सुधी चितौन की साधै रही,
सदा बातन मैं अनखाय रहे।
हंसि कै हरिचन्द न बोले कंभू,
जिय दूरहि सों ललचाय रहे॥
नहीं नेकु दया उर आवत है,
करि के कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले,
जिहि के बदले यों सताय रहे॥

कित कों ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
हरिचन्द भये हौ कहा के कहा,
अन बोलिबे में नहिं छाजत हौ॥

मित को मिलनो तो किनारे रह्यो,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ कै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ॥

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहै,
तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरुदावली आपुनी राखौ मिलौ,
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं॥
हरिचन्द जू होनी हूती सो भई,
इन बातन सों कछू हात नहीं।
अपनावते सोच बिचारि अबै,
जलपान कै पूछनी जात नहीं॥

धाइ कै आगे मिलौ पहिले तुम,
कौन सो पूछि कै सो मोहि भाखौ।
क्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
केहि के कहे एतो कियो अभि लाखौ॥
काज बिगारि सबै अपुनो,
हरिचन्द जू धीरज क्यौं नहिं राखौ।
क्यौं अब रोइ कै प्रान तजौ,
अपुने किये को फल क्यौं नाहिं चाखौ॥

इन दुखियान कों न सुख सपने हू सिल्यौ,
योंही सदा व्याकुल विकल अकुलायगी।
प्यारे हरिचंद जू की बीती जानि औध जौपैं,
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायेगी॥

देख्यौ एक बारहू न नैन भरि तोहियातें,
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी।
बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय,
देखिलीजौ आँखैं ये खुलीही रहि जायँगी॥
रहसि रहसि हंसि हंसि के हिंडोरे चढ़ी,
लेत खरी पेंगे छवि छाजैं उसकन मैं।
उड़त दूकूल उघरत भुज मूल बढ़ी,
सुखमा अतूल केस फूलन खसन मैं॥
ओझल ह्वै देखि देखि भये अनिमेख लाल,
रीझत विसूर श्रम सीकर मसन मैं।
ज्यौं, ज्यौं, लचि लचि लंक लचकत भावती की,
त्यौं, त्यौं, पिअ प्यारी गहैं आँगुरी दसन मैं॥

\+ + + +

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन बिचार लयो।
नहिं जानि परै हरिचन्द कछू,
बिधि ने हम सों हठ कौन ठयो॥
निसि आजहू की गई हाय बिहाय,
पिया बिनु कैसे न जीव गयो।
हत—भागिनी आँखिन कों नित के,
दुख देखिबे कों फिर भोर भयो॥

काम कछू नहिं यासो हमैं,
सुख सों जहाँ चाहिए रैन बिताइए।
पै जो करैं बिनती हरिचन्द जू,
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए॥

एक मतै उन सों क्यौं कियो,
तुम सोउ न आवै जो आपन आइए।
रूसिवे सों पिय प्यारे तिहारे,
दिवाकर रूसत है क्यों बताइए॥

कहाँ चली सजिकै? पियारे सों मिलन काज,
कहाँ तू खड़ी है? प्यारे ही को यहधाम है।
कहा कहै मुख सों? पियारे प्रान प्यारे,
कहा काज है? पियारे सों मिलन मोहि काम है॥
मैं हूँ कौन बोलतौ? हमारे प्रान प्यारे हौन,
तू है कौन? प्रीतम पियारे मेरो नाम है।
पूछत सखी कै एकै उत्तर बतावति,
जकी सी एक रूप आज श्यामा भई श्याम है॥

(क्यों इन कोमल गोल कपोलन,
देखि गुलाब को फूल लजायो।
त्यों हरिचन्दजू पंकज के दल,
सों सुकुमार सबैं अँग भायो॥
अमृत से युग ओठ लसैं मृदु,
पल्लव सों कर क्यों है सुहायो।
पाहन सो मन होत सबै अँग,
कोमल क्यों करतार बनायो॥)

नवीन-नमूने

[वर्त्तमान कवियों से साभार संकलित]

मैथिलीशरण गुप्त

अरुणपट पहने हुए आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में।
प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं,
कांति की किरणें उजेला कर रहीं
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई,
आप विधि के हाथ से ढाली गई
कनक लतिका सी कमल सी कोमला,
धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला।
जान पड़ता नेत्र पेख बड़े बड़े,
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्मरागों से अधर मानो बने,
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।
और उसका हृदय किससे है बना,
वह हृदय ही है कि जिससे है बना।
प्रेम-पूरित सरल कोमल चित्त से,
तुल्यता की जा सके किस वित्त से।
शाण पर सब अंग मानों चढ़ चुके,
प्राण फिर उनमें पड़े जब गढ़ चुके।

झलकता आता अभी तारुण्य है,
आ गुराई से मिला आरुण्य है।
लोल कुण्डल मण्डलाकृति गोल है,
घन पटल से केश, कांत कपोल हैं।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी,
दमकती है दामिनी सी द्युतिभरी।
है करों में भूरि भूरि मलाइयाँ,
लचक जाती अन्यथा न कलाइयाँ?
चूणियों के अर्थ जो हैं, मणिमयी,
अंग ही की काँति कुन्दन बनगई।
एक ओर बिशाल दर्पण है लगा,
पार्श्व से प्रतिबिंब जिसमें है जगा।
मंदिरस्था कौन यह देवी भला,
किस कृती के अर्थ है इसकी कला।
स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही उर्मिला।

\+ \+ \+

पुन्य तपोवन की रज में वह खेल खेल कर बड़ी हुई,
आश्रम की नवलतिकाओं के साथ साथ कुछ बड़ी हुई,
पर समता कर सकी न उसकी राज्योद्यान मल्लियाँ भी,
लज्जित हुई देखकर उसको नन्दन विपिन बल्लियाँ भी,

उसके रूप रंग सौरभ से महक उठा वह बन सारा,
जीवन की धारा थी मानो मन्जु मालिनी की धारा,
रखती थी प्रेमद्र सभी को वह अपने व्यवहारों से,
पशु पक्षी भी सुख पाते थे उसके शुद्धाचारों से,

कभी घड़ों से भर-भर कर वह पौधों को जल देती थी;
कभी खगों के, कभी मृगों के बच्चों की सुधि लेती थी।
तोते कभी पढ़ाती थी वह कभी मयूर नचाती थी;
सहचरियों के साथ छाँह में क्रीड़ा कभी मचाती थी॥

सीमा-रहित अनन्तगगन-सा विस्तृत उसका प्रेम हुआ
औरों का कल्याण-कार्य्य ही उसका अपना क्षेम हुआ
हिंसक पशु भी उसे देखकर पैरों में पड़ जाते थे
मुँह में हाथ दबाकर धीरे मीठी थपकी पाते थे

बुद्धि कुशाग्र-भाग-सी उसकी शिक्षा पाने में पैठी;
पाठ याद कर लेती थी वह अनायास बैठी बैठी।
देव देवियों के चरित्र जब प्रेम सहित वह गाती थी—
तब मालिनी नदी भी मानों क्षण भर को थम जाती थी॥

हंस और मीनों से उसने जल में तरना सीखा था
शीतल और सुगन्ध पवन से मन्द विचरना सीखा था
होम-शिखा से सद्भावों का जग में भरना सीखा था
आश्रम के उन्नत विटपों से परहित करना सीखा था।

मुक्त नभोमंडल-सा अविचल निर्मल जीवन था उसका;
ऊषा के प्रकाश-सा पावन निरालस्य तन था उसका।
प्रकट-अधिष्ठात्री-सी थी वह, धन्य तपोवन था उसका;
उज्ज्वल, उच्च हिमालय जैसा अति उन्नत मन था उसका॥

सुमित्रानंदन पंत

प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरुण-अधरों की पल्लव-प्रात, मोतियों-सा हिलता हिम-हास;
इंद्रधनुषी पट से ढँक गात, बाल-विद्युत का पावस-लास;
हृदय में खिल उठता तत्काल, अधखिल-अङ्गों का मधुमास;

तुम्हारी छवि का कर अनुमान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

खेल सस्मित-सखियों के साथ सरल-शैशव-सा तुम साकार;
लोल-कोमल-लहरों में लीन लहर ही-सी लघुभार;
सहज करती होगी सुकुमारि ! मनोलहरों से बाल-विहार;

सरित में हंसिनी-सी कल तान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

खोल सौरभ का मृदु कच-जाल सूँघता होगा अनिल समोद;
सीखते होंगे उड़ खग-बाल, तुम्ही से कलरव, केलि, विनोद;
घूम लघु-पद-चंचणता प्राण ! फूटते होंगे नव जल स्रोत;

मुकुट बनती होगी मुसकान,
प्रिये प्राणों की प्राण !

मृदुल-सरसी में तुम सुकुमार अधोमुख अरुण सरोज समान;
मुग्ध-कवि के उर के छू तार प्रणय का-सा नव-गान;
तुम्हारे शैशव में, सोन्माद पा रहा होगा यौवन प्राण;

\+ + + +

स्वप्न सा विस्मय सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकम्पित मृदु उर पुलकित गात।
सशंकित, ज्योत्सना सी चुपचाप,
जडित पदनमित पलक दृग पात ॥
पास जब आ न सकोगी,
मधुरता में सी भरी अजान ॥

लाज की छुई मुई सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

सुमुखि, वह मधु क्षण, वह मधुवार,
धरोगी कर में कर सुकुमार ।
निखिल जब नरनारी संसार,
मिलेगा नव सुख से कर नव बार।
अधर उर से उर अधर समान,
पुलक से पुलक प्राण से प्राण।

कहेंगे तीख प्राणयाख्यान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

\+ \+ \+

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन ही था आभूषन,
कान से मिले अजान-नयन,
सहज था सजा सजीला तन।

सुरीले, ढीले अधरों बीच,
अधूरा उसका लचका गान,
बिकच बचपन को मन को खींच,
उचित बनजाता था उपमान॥

छपी-सी पी-सी मृदु मुसकान,
छिपी सी खिची-सखी-सी साथ।
उसी की उपमा सी बन, भान,
गिरा कर धरती थी धर हाथ॥

रँगीले गीले फूलों से,
अधखिले भावों से प्रमुदित।
बाल्य सरिता के फूलों से,
खेलती थी तरंग सी नित॥
इसी में था असीम अवसित

महादेवी वर्मा

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है !
मेरी आँखों में ढल कर छवि उसकी मोती बन आई;
उसके घनप्यालों में है बिजली-सी मेरी परछाईं;
नभ में उसके दीप स्नेह जलता है पर मेरा उनमें;
मेरे हैं यह प्राण, कहानी पर उसकी हर कम्पन में;

यहाँ स्वप्न की हाट वहाँ अलि छाया का मेला-सा है !
उसकी स्मित लुटती रहती कलियों में मेरे मधुवन की;
उसकी मधुशाला में बिकती मादकता मेरे मन की;
मेरा दुख का राज्य और उसकी सुधि के पल रखवाले;
उसका सुख का कोष वेदना के मैंने ताले डाले;

वह सौरभ का सिंधु मधुर जीवन मधु की बेला-सा है !
मुझे न जाना अलि उसने जाना इन आँखों का पानी;
मैंने देखा उसे नहीं पदध्वनि है केवल पहिचानी;
मेरे जीवनमें उसकी स्मृति भी तो विस्मृति बन आती;
उसके सूने मंदिर में काया भी छाया होजाती;
क्यों यह निर्मम खेल सजनि मुझसे उसने खेला-सा है !

+ + +

(१)

सूने मानस-मंदिर में,
स्वप्नों की मुग्ध हँसी में,
आशा के भग्न हृदय में,
बीते की चित्रपटी में।

(२)

प्राणों के आवाहन में,
जीवन की क्षीण शिखा में,
नीरवता के अंचल में,
नेही की पुष्प-चिता में।

(३)

उन थकी हुई सोती सी,
ज्योत्स्ना की मृदु पलकों में,
बिखरी उलझी हिलती सी,
मलयानिल की अलकों में।

(४)

काले रजनी अंचल में,
नक्षत्रों के पहरों में,
ऊषा के उपहासों में,
मुस्काती सी लहरी में।

(५)

उलझे सोने के सपने,
उर-वीणा के तारों में,
मैं सुलझाने बैठी थी,
भावों के उद्गारों में।

(६)

उस सूने पथ में अपने,
पैरों की चाप छुपाये,
इस पार मुग्ध मानस में,
तुम धीरे धीरे आये।

(७)

मेरी मदिरा मधुवाली,
तुमने सारी ढुलकादी,
भर दी पीड़ा से हँस कर,
मेरे जीवन की प्याली।

(८)

मेरी टूटी वीणा के,
एकत्रित कर तारों को,
टूटे सुख के स्वप्नों को,
फिर कहते हो गाने को।

(९)

यह जागृति है निद्रा की,
इस रोदन में हँसना है।
अमरत्व भरी मदिरा है,
ध्रुव यह अस्थिर सपना है।

(१०)

इस मीठी सी पीड़ा में,
डूबा जीवन का प्याला,
उसमें लिपटी इतराती,
मेरी आँसू की माला ।

(क्या पूजन क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुंदर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते रहते प्रतिपल मेरे स्वन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्त्तन रे !)

\+ + + +

(तुम मानस में बस जाओ,
छिप दुख की अवगुण्ठन से;
मैं तुम्हे ढूँढ़ने के मिस,
परिचित हो लूँ कण-कण से !

\+ + + +

आवे बन मधुर मिलन क्षण,
पीड़ा की मधुर कसक-सा;
हँस उठे विरह ओठों में
प्राणों में एक पुलक-सा!
पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूँ पाना;
यह चिर अतृप्ति हो जीवन,
चिर तृष्णा हो मिट जाना!

ठा० गोपाल शरण सिंह

लोचन-लुभावनी ललित लतिका सी लोल,
देखी वह मंजुमूर्ति मैंने उपवन में।
अकथ अनूप सुखमा की प्रतिमा थी वह,
बाल पन का था समावेश युवा पन में।
शोभा की सदन वह घने तरुओं के बीच,
शोभित थी चारु चंचला सी मंजु घन में।
नन्दन विहारिणी ललाम काम कामिनी का,
उसको विलोक आरहा था ध्यान मन में।
आँख खुलते ही वह दृश्य तो अदृश्य हुआ,
किन्तु दामिनी सी रोम रोम में समा गई।
गई है विराज मंजु मूर्ति मानो मंदिर में,
उर में विचित्र एक ज्योति है जगा गई।
मोर केश-घन का चकोर मुख-चन्द्रमा का,
मन को विलोचन को वह है बना गई।
पल भर में अजान प्राण को लुभा गई है,
निज छबि जाल में है चित्त को फंसा गई।

\+ + + +

शरद-जुन्हाई-सी है गात की गोराई चारु,
आनन अनूप मानो फुल्ल जलजात है।
किस भाँति कोई कभी यह बतलावे भला,
कब दिन होता और होती कब रात है।

उसमें मिली है प्रभा शशि और सूर्य की भी,
क्या नहीं स्वयं ही सिद्ध होती यह बात है ?
किसने देखी वह रूप-राशि बारबार,
तो भी अनदेखी वह होती सदा ज्ञात है।

\+ + + +

"पान मैं न खाती कभी तो भी ये अधर मेरे,
लाल लाल होते जारहे हैं क्यों प्रवाल से ?
बढ गए सत्य ही क्या मेरे ये बिलोचन हैं,
लगते न जाने क्यों ये मुझको विशाल से ?
जोर जोर मुझसे चला हैं क्यों न जाता अब,
सीख-सी रही हूँ मंद चाल में मराल से।
सजनी भला क्यों मुझे यह गुड़ियों का खेल,
खेलना न नेक भी है भाता कुछ काल से ?

× × × ×

"मुखमा सभी की क्या है उसमें समायी सब,
उपमा न भाई कोई उसकी लुनाई की।
वैसी कान्ति देती कान्ति में भी दिखलायी नही,
करिए न बात सुमनों की सुघराई की।
छिप गई नभ में तुरन्त ही ऊषा की प्रभा,
छबि मन भायी देख होठों की ललाई की।
शरद-जुन्हाई शरमायी-सी शरण आयी,
समता न पाई जब गात की गोराई की।
रहती खिली है सदा वह कल कौमुदी-सी,
कमनीय कल्प-लतिकासी मन भाई है।
मानो मंजु दामिनी ललाम काम-कामिनी ने,
पाई मन भावनी उसी से सुघराई है

उसको निहार कर होता यह है बिचार,
रम्य रवि-रश्मियों की राशि सुख दाई है।
ज्वाला-सी किसी को मणि-माला सी किसी को,
सुर-वाला सी किसी को वह देती दिखाई है।"

\+ + + +

"मुख ने चुराई प्रभा मंजुल मयङ्क की है,
छीनी अधरों ने अरुणाई है प्रवाल से।
आँख ने चुराई सुघराई नील नीरज की,
बाँह ने चुराई पतलाई है मृणाल से।
कीर की लुनाई है चुराई मंजु नासिका न,
मन्द गति छीन ली है चाल ने मराल से।
तेरे लोल लोचन चुराते चित्त वित्त नित्य,
किन्तु वे उचित दंड नेक भी न पाते हैं।
चित्त जिनका वे छीनते हैं वे कदापि उसे,
वापस न पाते घोर दुख ही उठाते हैं॥
उनसे किसी को कभी मिलता नहीं है न्याय,
न्यायाधीश न्याय-शील व्यर्थ ही कहाते हैं।
जो हैं अपराधी उन्हें कहता न कोई कुछ,
अपराधहीन ही सताये सदा जाते हैं॥"

× × × ×

"छोड़के अनेक मृदु मधुर फलों को शुक,
तेरे अधरों की ओर दौड़ दौड़ जाते हैं।
तज कर फूल सभी सुध बुध भूल कर,
आनन सरोज पर भृंग मँडराते हैं॥

दीपक-शिखा से मुंह मोड के पतंग तेरी,
दिव्य तन ज्योति पर प्रीति दिखलाते हैं।
तेरी छवि देख खग आदि भी अघाते नहीं,
नर तो सदैव निज मन ही गमाते हैं॥"

\+ \+ \+ \+

"काले बादलों से केश उसके विलोक जब,
मोर नाचते हैं वह फूली न समाती है।
लेके निज गोद में समोद मृग-शावक को,
उसके दृगों से निज लोचन मिलाती है।
देह में कुसुम की कली भी लग जाती जब,
तब इठलाकर व्यथा-सी जतलाती है।
बार बार दर्पण में निज छवि देख के भी,
मंजु मृग लोचनी न नेक भी अघाती है॥"

× × × ×

"पान मैं न खाती किन्तु अरुण अधर मेरे,
पान मैं हूँ खाती यह भ्रम उपजाते हैं।
घूंघट में निज मुख रहती छिपाये सदा,
तो भी दृष्टि मुख से चकोर न हटाते हैं॥
किस भाँति जाऊँ उपवन में कभी मैं सखी,
घेर कर भृंग सदा मुझको डराते हैं।
मैं हूँ शरमाती जब मेरे पतिदेव मुझे,
देव-नागरी-सी दिव्य नागरी बताते हैं॥"

हरि औध

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका, राकेन्दु बिंबावना,
तन्वंगी कल हाँसिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली।
शोभा बारिधि की अमूल्य मणिसी लावण्य लीलामयी,
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य संमूर्त्ति थी॥

\+ \+ \+ \+

मंद मंद समद गयंद की सी चालन सों,
आलन लै लानन हमारी गली आइए।
पोंछि पोंछि प्रानन को सानन सहित इन,
कानन को बाँसुरी की तान न सुनाइए॥
हरि औध मोरि मोरि भौंहें जोरि-जोरि दृग,
चोरि-चोरि चितहूँ हमारो ललचाइए।
मंजुल रदन वारों मुद के सदन वारो,
मदन कदन वारो बदन दिखाइए॥

\+ \+ \+ \+

सेवाही मैं सास औ ससुर की सदैव रहैं,
सौतिन सों नाहिं सपने हूँ मैं लरति हैं।
सील सुधराई त्यों सनेह भरी सोहति है,
रोग्गरिसरार ओर क्यों हूँ ना ढरति हैं॥

हरिऔध सकल गुनागरी सती समान,
सूधे सूधे भायन सयानप तरति है,
परन पुनीत पति प्रीति में पगी ही रहै,
प्रानधन प्यारे में निछावरि करति हैं॥

× × × ×

कामिनी के कल बैन सुने नहीं
कानन हूँ करी कोटि कला है,
प्रीतम-प्रीति-प्रतिति मैं बाल
सनेह बनी सिय सौं सबला है।
ही हरि औध मयी आँखियान,
बिराजत एक ही नंदलला है,
भाग भरी त्यों सुहाग भरी,
अनुराग-भरी नवला अवला है॥

+ + +

चूमि चूमि प्यार ते उचारती बचन ऐसे
जाते प्रेम प्रीतम को तोपै भूरि छावतो;
मोहित ह्वै तेरे चोंच माँहि चारु-चामीकर
'हरि औध' हीरा हेरि हिय पै लगावतो।
एरे काक बोलत कहा है ककनीन बैठि
मंजुल-मनीन तेरे चरन जरावतो,
नैनन को तारो बाँकी-बड़ी-अखियान-वारो
प्यारो-प्रान वारो जो हमारो कंत आवतो॥

× × × ×

पतिया न आई एक बतिया न साँची भई
प्रीति मैं निहारी तऊ छतिया पगी रहैं,
आज कल ही मैं प्रान चाहत पयान कीने
तिन में प्रतीति तेरी तबहूँ खगी रहै।
प्यारे 'हरिऔध' तु मैं नीके ना निहारचा तऊ
रोइ रोइ जामिनी मैं अँखियाँ जगी रहै,
मनमन सपन हूँ मैं मगन भयो ना तऊ
पगन तिहारे मेरी लगन लगी रहै ॥

× × ×

तजि रावरी साँवरी सूरत साँवरे,
या हिय और समानो नहीं,
वह मीठी सुधा सों सनी बतियाँ,
सुनि कानन धीर धरातो नहीं,
हम कैसी करैं 'हरि औध' कहो,
अब मोमों कहू तो भिरातो नहीं,
इन आँखिन प्यारे तिहारे बिना,
जग औरतो कोऊ दिखातो नहीं।

रत्नाकर

गूँथन गुपाल बैठे बैनी बनिता की आप,
हरित लतानि कुंज माँहि सुख पाइ कै।
कहै रत्नाकर सँवारि रिरवारि बार,
बारबार बिवश बिलोकत बिकाइ कै॥
लाइ उर लेते कबौं फेरि गहि छोर लखें,
ऐसे रही ख्यालनि में लालन लुभाइ कै।
कान्ह गति जानि कै सुजान मन मोद मानि,
करत कहा है कह्यौ मुरि मुसकाइ कै॥

\+ + + +

जगर-मगर ज्योति जागति जवाहिर की,
पाइ प्रतिबिंब ओप आनन उजारी की।
छबि रतनाकर की तरल तरंगनि पै,
मानो जगा ज्योति होति स्वच्छ सुधाधारी की॥
सङ्ग में सखीगन के जोबन उमङ्ग भरी,
निरखति सोभा हाट बाट की तयारी की।
जित जित जाति बृषभानु की दुलारी फबी,
तित तित जाति दबी दीपति दिवारी की॥

\+ + + +

हेरे हूँ न हेरे दृग फेरे हूँ न फेरें दृग,
बेकल सी वागुन उधेरति बुनति है।
कहै रतनाकर मगन मन ही मन में,
जानै कहा आनि मन गौरि के गुनति है॥
होरिथिर कबहूँ छनेक फिरि एका एक,
भाँतिन अनेक सीस कबहूँ धुनति है।
थालि गयो जबतें कन्हैया नेह कानन में,
तब तें न नैंकु कछू काहू की सुनति है॥

\+ \+ \+ \+

रंग रूप रहित लखात सबही हैं हमैं,
वैसो एक और ध्याइ धीर धरि हैं कहा।
कहै रतनाकर जरी हैं विरहानल मैं,
और अब जोति कौं जगाइ जरि हैं कहा॥
राखौ धरि ऊधौ उतै अलख भी रूप ब्रह्म,
तासौं काज कठिन हमारे सरि हैं कहा।
एक ही अनङ्ग साधि साध सब पूरी अब,
और अङ्ग-रहित अराधि करि हैं कहा॥

कर बिनु कैसैं गाँय दूहि हैं हमारी वह,
पद बिन कैसैं नाचि थिरकि रिझाइ है।
कहै रतनाकर बदन बिनु कैसैं चाखि,
माखन बजाइ बेनु गोधन गवाइ है॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिना ही हाय,
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइ है।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइ है॥

\+ + + +

जोग को रमावै औ समाधि को जमावै इहाँ,
सुख दुख साधनि सौं निपट निबेरी हैं।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ,
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं॥
हम जमराज की धरापति जमा न कछू,
सुरपति सपति की चाहति न ढेरी हैं।
चेरी हैं न ऊधो, काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सुधो कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं॥

सरग न चाहै अपबरग न चाहैं सुनौ,
मुक्तिभुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग रोग माहिं,
तनमन सांसनि की साँसति प्रमानै हम॥
एक ब्रजचन्द्र कृपामंद मुसकानि हीं मैं,
लोक पर लोक कौ अनंद जियजानैं हम।
जाके या बियोग दुःख हू मैं सुख ऐसौ कछू,
जाहि पाइ ब्रह्मसुख हू मैं दुख मानैं हम॥

× × × ×

वाही सुख मंजुल की चाहति मरी चैं सदा,
हम कौं तिहारी ब्रह्मज्योति करिबौ कहा।
कहै रतनाकर सुधाकर-उपासिनि कौं,
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा॥
भोगिरहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै,
ताके सोग सारन कौं जोग चरिबौ कहा।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भवौ,
बिरह चिंगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा॥

ऊधौ यह ज्ञान कौ बखान सब बाद हमैं,
सूधौ बाद छाँड़ि बकबादहिं बढ़ावै कौन।
कहै रतनाकर बिलाय ब्रह्म काय माहिं,
लायन सौं आपुनपौ आपुनौ नसावै कौन॥
काहू तौ जनम मैं मिलैंगी स्याम सुन्दर कौं,
याहू आस प्रानायाम-साँस मैं उड़ावै कौन।
परि कै तिहारी ज्योति-ज्वाल की जगाजग मैं,
फेरि जगजाइबे की जुगति जरावै कौन॥

कीजै ज्ञान भानु कौ प्रकास गिरिस्रृंगनिपै,
ब्रज मैं तिहारी कला नैंकु खटि हैं नहीं।
कहै रतनाकर न प्रेम तरु पै है सूखि,
या की डार-पात तृनतूल घटि हैं नहीं॥
रसना हमारी चारु चात की बनी हैं ऊधौ,
पी पी की बिहाइ और रट रटि हैं नहीं।
लौटि-पौटि बात कौ बबंडर बनावत क्यों,
हियतैं हमारे घन स्याम हटि हैं नहीं॥

ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजो एक,
जानति अनेक न बिबेक ब्रजवारी हैं।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ छमा,
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर,
कीजै न दरसरसबंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं,
जो कहौ सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं॥

\+ + + +

धाई जिततित तैं बिदाई-हेत ऊधव की,
गोपी भरीं आरति संम्हारति न साँसुरी,
कहै रतनाकर मयूर पच्छ कोऊ लिए,
कोऊ गुञ्ज अजली उमाहे प्रेम आँसुरी।
भाव भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही,
कोऊ महीं मंजु दाबि दलकति पाँसुरी,
पीतपट नंद जसुमति नवनीतनयौ,
कीरति कुमारी सुधावारी दई बांसुरी ॥

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ,
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात हैं;
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के,
कातर ह्वै प्रेम सौं सकल महि जात है।
सबदन पावत सो भाव उम गावत जो,
ताकि ताकि आनन ठगे से ठहि जात हैं;
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ,
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं॥

छावते कुटीर कहुँ रम्य जमुना कैं तीर,
गौन रौन रेती सौं कदापि करते नहीं,
कहै रतनाकर विहाइ प्रेम गाथा गूढ़,
स्रोन रसना मैं रस और भरते नहीं।
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं;
हौ तौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ,
तजि ब्रज गाँव इतै पावँ धरते नहीं॥

रामकुमार वर्मा

छिपा उर में कोई अनजान !

खोज खोज कर सांस विफल, भीतर आती जाती है,
पुतली के काले बादल में, वर्षा सुख पाती है;
एक वेदना विद्युत् सी खिंच खिंच कर चुभ जाती है,
एक रागिनी चातक स्वर में सिहर सिहर गाती है।

कौन समझे समझावे गान ?
छिपा उर में कोई अनजान ।

\+ \+ \+

भूलकर भी तुम न आये !
आँख में आँसू उमड़ कर,
आँख ही में हैं समाये ॥

सुरभि से शृङ्गार कर—
नव वायु प्रिय पथ में सजाई,
अरुण कलियों ने स्वयं सज,

आरती उर में सजाई ।
बन्दना कर पल्लवों ने,
नवल बन्दनवार छाये ॥

मैं ससीम, असीम सुख से,
सींच कर संसार सारा।

साँस की विरुदावली से,
गा रहा हूँ यश तुम्हारा ।

पर तुम्हें अब कौन स्वर,
स्वरकार ! मेरे पास लाये ?
भूल कर भी तुम न आये !

अनूप शर्मा

विशद वसन्त के रसाल विटपी पै बैठ—
बोलती रसाल बैठ अति सुखदाई तू।
हीय में हिलोर है उठाती श्रवणों के मध्य,
भरती अनूप सुधा सदृश मिठाई तू॥

वीणा के विनिन्दक भ्रमर जब गूँजते हैं,
करती मृदंग से भी ताल अधिकाई तू।
खोल-खोल मुखको सुधाको घोल-घोल प्यारी,
बोल बोल कोकिले कहाँ से यहाँ आई तू॥

छिप कर बैठी तू रसाल पल्लवों के मध्य,
श्रेमिक अनूप से स्वरूप क्यों छिपाती है।
मञ्जु मंजरी की मत्तकारिणी सुगन्द सूँघ,
होश रखती है या सच ही मदमाती है॥

केवल सुनाता एक स्वर श्रवणों में पर,
खोज-खोज हारे कभी दृष्टि में न आती है।
मनमें लजाती है इसी से लुक जाती है कि,
भूप पै न दिखाती है छिपे ही-छिपे गाती है॥

आती मधु ऋतु में सुनाती रसिकों को बोल,
गाती गान सुखद महान छवि छोती है।
सुख सरसाती है प्रभाती गीत गाती सदा,
मोद बरसावी है हमारे मन भाती है॥

किन्तु अब सत्य ही बता तू भरमा तू मत,
बीते ऋतुराज के कहाँ को चली जाती है।
व्योम में समाती है अचल पर जाती है कि,
कोई कामिनी के कलकंठ में समाती है॥

× × ×

भू में हैं तरुणी असंख्य प्रमदा दिव्या कुरंगाम्बका,
भोगी भी बहु हैं निकेत बल के, आगार शृङ्गार के,
पाता, किन्तु वही महान प्रणयी संभोग का योग है,
जो विस्तार करे प्रमोदवश हो तादात्म्य के भाव का।

कन्या सुन्दर काम रंग रचती अगांग में है यदा,
आती है रति रेख भी युवक के उत्फुल्ल नेत्राब्ज में,
व्रीड़ा कामिनि की युवा हृदय का संकोच, दोनों तदा,
होते स्वर्ग्य प्रकाश से सुरभि से सारंग से दिव्य हैं।

देखो, अम्बुधि एक अश्रुकण में, ब्रह्माण्ड एकाणु में,
ढाई अक्षर में महान बुधता, आकाश का सार में,
सारा विस्तृत काल एक पल में देखो यहाँ बद्ध है,
केन्द्रीभूत समस्त दुःख सुख हो व्यापे इसी प्रेम में।

प्रेमी का बस एक प्रेम पथ है, जो दीर्घ दुर्लंघ्य है,
धारा है असि की कराल अथवा तीव्रा अणी कुतंकी,
झंझावत समान चितवन की शाखा प्रशाखा हिला,
जो प्रेमी शिर पै किरीट रखता, शूली चढ़ाता वही।

तारा पाण्डेय

प्रभु ! मैं कैसे तुमको पाऊँ !

तू महान मैं लघु रजकण हूँ, कैसे प्रेम दिखाऊँ ?
कैसे करूँ प्रार्थना तेरी, नहीं रुचेगी बिनती मेरी,
जग में अन्धकार छाया है, कहाँ खोजने जाऊँ ?
कभी सोचती हूँ मैं मन में, क्यों हूँ बँधी हुई बँधन में।
मुझमें ही तो मुक्ति विहित है, चाहूं तो खुल जाऊँ !
तेरे नियम वृथा करने को, केवल क्षणिक स्वार्थ रखने को !
कर्महीन बनकर, सुख के हित–क्यों तेरे गुण गाऊँ ?
मुझे रुला, मैं हँसती जाऊँ औरों के हित जलती जाऊँ।
अन्तिम दे बरदान मुझे, अपने में तुझको पाऊँ !

बच्चन

आज सजीव बना लो प्रेयसि !
अपने अधरों का प्याला,
भरलो भरलो भरलो इसमें
यौवन मधुरस की हाला,
और लगा मेरे अधरों से
भूल हटाना तुम जाओ,
अथक बनूं मैं पीने वाला
खुले प्रणय की मधुशाला ॥

\+ + + +

सुमुखि ! तुम्हारा सुन्दर मुख ही,
माणिक मदिरा का प्याला !
छलक रही है जिसमें छल छल,
रूप मधुर मादक हाला !
मैं ही साकी बनता मैं ही,
पीने वाला बनता हूं !
जहाँ कहीं मिल बैठे हम,
तुम वहीं गई हो मधुशाला !

\+ + + +

उस प्याले से प्यार मुझे जो
दूर हथेली से प्याला,
उस हाला से चाव मुझे है
दूर अधर से जो हाला;

प्यार नहीं पा जाने में है,
पाने के अरमानों में !
पा जाता तब हाय, न इतनी
प्यारी लगती मधुशाला ॥

\+ \+ \+

जितनी दिल की गहराई हो
उतना गहरा है प्याला,
जितनी मन की मादकता हो
उतनी मादक है हाला,
जितनी उरकी मादकता हो
उतना सुंदर साकी है,
जितना ही जो रसिक, उसे है
उतनी रसमय मधुशाला ॥

\+ \+ \+ \+

यदि प्रणय जागा न होता इस निशा में
सुप्त होती विश्व की संपूर्ण सत्ता,
वह मरण की नींद होती जड़ भयंकर
और उसका टूटना होता असंभव,
प्यार से संसार सो कर जागता है,
इस लिए है प्यार की जग में महत्ता ॥

बालकृष्ण राव

प्रेयसि ! तेरा मृदु, मधुर हास,
मनहर, सांकेतिक भ्रू विलास,
तारों की द्युति में हो विलीन,
ज्योतित करता मन अनायास।

यह मंथर गति, शीतल समीर,
दे सौख्य, शान्ति करता अधीर-
अभिलाषानल करता प्रतप्त,
आन्दोलित कर नैराश्य-नीर।

शशि रजत-करों से बार बार,
सुषमा-तन्त्री के छेड़ तार,
मधुमय ध्वनि कर, प्रिय ! रहा खोल,
भावना-भवन के दिव्य द्वार।

वर्षों की वह अव्यक्त प्रीति,
हो गई प्रकट, तज पूर्व-रीति—
सुख-स्वप्न-सिन्धु में प्राणेश्वरि !
डूबी जागृति की भीष्म-भीति॥

सुन्दर कुमारी

सब तुम से बिहँस रहे हैं-
मैं नहीं बोलने पाती।
मेरी ये प्यासी आँखे-
हैं तरस तरस रह जाती॥
हूँ इसी कुञ्ज की कोकिल-
क्यों नहीं कूकने पाती।
हूं भ्रमरी फिर सुमनों पर-
क्यों नहीं गूँजने पाती॥

मैं चढ़ा चुकी चरणों पर-
संचित सुमनों की डाली।
तुम नन्दन वन हो मेरे-
मैं हूँ प्रसून तुम माली॥
कब तक यों करूँ प्रतीक्षा-
कब मानोगे मेरे धन।
बोलो कब तक देखोगे-
ये भरी आँख, खाली मन॥

भगवती प्रसाद वाजपेयी

"तुम मिलीं और इस पनघट पर,
दो भरी गगरियाँ लिये चलीं
मैं प्यासा ही रह गया और,
तुम छलक लहरियाँ लिये चली।

विश्रांत पथिक मैं परदेसी,
तुम कल्पलता इन्द्राणी-सी,
मैं मूक चित्रवत् खड़ा रहा,
तुम चलीं चटुल रतिरानी-सी।

प्रत्येक तुम्हारा पदक्षेप,
मेरा विलोल पागलपन था,
मैं चेतन हूँ कि अचेतन हूँ,
इस विभ्रम में मेरा मन था।

यह मन भी एक नवल शिशु है,
अतिशय चंचल, अस्थिर प्रतिपल;
जिसको पाया उसको पकड़ा,
फिर चखने को भी चरम विकल।

प्रत्येक खिलौना उसका है,
कोई हो, चाहे जिसका हो;
वह यही चाहता है सदैव,
जिसको चाहे, वह उसका हो।

यद्यपि मानवता का बिकास,
अब आगे बहुत चला आया;
तो भी वह मेरे इस मन की,
शिशुता को कहाँ बदल पाया।

तिस पर भी मैं था तृषा-तप्त,
तुम सुधामयी अभिरामा थी;
मैं बूँद-बूँद का चातक था,
तुम स्वाति-सघन-घन श्यामा थीं।

प्रत्येक तुम्हारा पाद-पद्म,
ज्यों-ज्यों आगे को पड़ता था;
मैं मन-ही-मन प्रार्थना एक,
करने को आगे बढ़ता था।

ठहरो सुन लो, मैं कुछ बातें,
तुमसे ही कहने को आया;
अब तक मैंने उनके कहने,
का कहीं नहीं अवसर पाया।

मैं आदिकाल का तृषित पुरुष,
तुम प्रकृति-रूपिणी माया हो;
जिस उपाख्यान का उपोद्घात
मैं, तुम उसकी ही काया हो।

मैं जिस तरुवर का जीवन हूँ
उसकी तुम शीतल छाया हो;
भर दो ऐसी अंजलि जिस पर,
प्रतिबिम्ब तुम्हारा आया हो।

मैं बूँद-बूँद इस भाँति पिऊँ,
अंजलि के जल का अन्त न हो,
निश-दिन पीता ही रहूँ किन्तु-
तृष्णा का प्रकट दिगन्त न हो।

तुम अजर स्रोत-रूपिणी सजनि,
कुछ अंजलियों की कौन बात ?
मैं चिर अतीत से मुखर मुक्त,
इस जग-जीवन का हूँ प्रपात।

मैं निशा-उषा सश्लिष्ट अनिल,
मैं मानस की हूँ लहर लोल;
मैं सुख-दुख के निर्द्वन्द-द्वन्द्व—
के पल-पल में करता कलोल।

मैं प्रथम मिलन के अन्तर्गत,
प्रस्फुरण विमल मसुकानों का;
मैं हूँ प्रलयंकर विस्फुलिंग,
कुछ शिथिल हुए अरमानों का।

मैं दैन्य-दुर्दशा की तड़पन,
मैं दुर्बलता का नाशकाल;
मैं आदि शक्ति सौभाग्य चिह्न—
सा लाल-लाल वह बिंदु भाल।

मित्रता-हीन शत्रुता-हीन
भावों का मैं हूँ मिलन रूप;
मैं आदिकाल से अनाघ्रात
हूँ सुमन और निर्धूम धूप।

मैं प्रेम-रूप कामना-कुञ्ज
का एक मात्र अविकल निःस्वन,
पति-दर्शन तक से चिरवंचित,
नव विधवाओं का पागलपन।

तुम चली गई, यह भी न देख,
है खड़ा हुआ यह पथिक कौन;
इकटक होकर जो देख रहा,
कुछ कहने को है, किन्तु मौन।

सोचो कि तुम्हारा पग-चालन
था राजहंसिनी के समान।
तिस पर तुम भारानत चलदी;
द्रुत गति का धारण कर विधान।

इस पनघट के पंकिल पथ का;
कुछ मर्म तो तुम्हे ज्ञात न था;
फिसलन से बचने का प्रकार,
अभिसार और प्रणिपात न था।

तुम गिरीं-और तब साथ-साथ,
वे अमृत-गगरियाँ गई फूट;
तुम अस्त-व्यस्त हो गई-और,
चिर-संचित चुरियाँ गई टूट॥

जो-सुधा-बिन्दु इस जीवन को,
अक्षय अविनश्वर कर जाते।
वे हाय पंक में मिल मिलकर,
मेरी तृष्णा है झुलसाते।

तुम रिक्त-हस्त औ क्षिप्त-ध्वस्त
होकर चल दीं चिर खिन्न मौन;
अब निकट देखकर बोल उठीं
बतलाओ तुम हो पथिक कौन?

मैं क्या-क्या हूँ, क्या बतलाऊँ,
जब बतलाने की नहीं बात;
मैं प्यासा ही मर गया तुम्हारा,
देख अकल्पित घट निपात।"

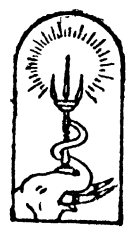

केसरी

अरी ओ मेरी गीति-सरी !
तू कब होगी सुन्दर से बढ़कर त्रिभुवन श्रेयस्करी ?
अरी ओ मेरी गीति-सरी !

जग-मरु में चाँदी की लकीर सी स्वप्नों में भूली भूली;
बहती तू अपनी छवि की उमड़ घुमड़ में यों फूली-फूली;
पर री छिछली ! तुझसे न भरी जग की छूँछी गगरी।
अरी ओ मेरी गीति-सरी !

तू देख अरी वह निर्झरिणी, चट्टान शिला से टकराती,
वह रसवन्ती सुकुमार, चण्डिका-सी पवि पावन दहलाती;
आती है तोड़-फोड़ कारा का रुद्ध-द्वार मृदु कलावती ।
दुर्दिन में जो दुर्गा न बनी वह क्या शिव की पार्वती सती ?
जग तृषावन्त, तू मधु अनन्त कर सार्थक री अपनी काया,
तू सुधाधार यों मुधा न हो केवल मोहक मृगाम्बु-माया,
कवि की मानस-पुत्री तू अरी धरित्री की सुहाग-कलशी;
मेरी कल्पना सुहागिन हुलसी के उर तुलसी-सी विलसी !!
तू मुक्त शरद् प्रसन्न बन करुणा-वरुणा-सी प्रशान्त गहरी,
शुचिता गङ्गा की, भीषणता वैतरिणी की, तू ले बहरी !
सुख-दुख के दोनों कूल बँधी तू विश्व-वेदना सह री !
अरी ओ मेरी गीति-सरी !

लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'

दीन उर में हो रहा
प्रिय आज अभिनन्दन तुम्हारा।

हो गयीं तन्मय तुम्हीं में
मुग्ध मन की भावनाएँ।
मिलन के अभिलाष से ही
मिट गयी सारी व्यथाएँ।

ध्यान ही से हो गया
दृढ़ तर मधुर बन्धन तुम्हारा।

है प्रतीक्षा में विकल
अपलक छिपाये मर्म अपना।
हो समुत्सुक देखते हैं,
जागरण का सुखद सपना।

ललक लोचन कर रहे हैं
मौन पद-वंदन तुम्हारा।

दीन उर में हो रहा
प्रिय आज अभिनन्दन तुम्हारा॥

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

तुम तुङ्ग-हिमालय-शृङ्ग, और मैं चञ्चल-गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं कान्त-कामिनी-कविता॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति, तुम सुरा-पान-घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।
तुम दिनकर के खर किरण जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान॥
तुम योग और मैं सिद्धि, तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।
तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरञ्जिनी भाषा।
तुम नन्दन वन-घन-विटप, और मैं सुख शीतल तरुशाखा॥
तुम प्राण और मैं काया, तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार, मैं वेणी काल नागिनी।
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह रागिनी॥
तुम पथ हो, मै हूँ रेणु, तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं उर अधरों की वेणु।
तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं बाटजोहति आशा।
तुम भव सागर दुस्तर, पार जाने की मैं अभिलाषा॥
तुम नभ हो मैं नीलिमा, तुम शरत-काल के बाल इन्दु,

मैं हूँ निशीथ-माधुरिमा।

तुम गन्ध-कुसुम-कोमल-पराग, मैं मृदुगति मलय-समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति, प्रेम जंजीर॥
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति, तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र,

मैं सीता अचला भक्ति।

तुम आशा के मधुमास, और मैं पिककलकूजन तान।
तुम मदन पंच-शर हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना, तुम चित्रकार, घन पटल श्याम,

मैं तड़ित तूलिका रचना।

तुम रण-तांडव-उन्माद नृत्य मैं मुखर मधुर-ध्वनि।
तुम नाद वेद ओंकार-सार, मैं कवि श्रृंगार शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति, तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द-शुभ्र

तो मैं हूं निर्मल व्याप्ति।

श्याम नारायण पाण्डेय

मौन रह कर क्या करोगी ?

और मेरे रिक्त उर में मधु-मधुर-रस ही भरोगी।
बन्धनों से मुक्त होना तो बहुत ही दूर रानी।
लग गया मेरे करों का माँग में सिन्दूर रानी।
हृदय एकाकार बनने के लिये जब घुल रहे हैं।
फिर न क्यों मन के, नयन के, प्राण के, पट खुल रहे हैं।
तब न मन से मन मिला था,था अपरिचित प्यार तेरा।
आज तेरे मृदु-पदों पर झुक गया संसार मेरा॥
प्यार से भुज-पाश क्या मेरे गले में डाल दोगी ?

इस प्रणय का मूल्य कैसे आँक सकता मुक्त योगी।
इस मिलन का मूल्य तो कुछ जान सकता चिर वियोगी।
गुद्-गुदाता है मुझे यह आज का शृंगार तेरा।
क्या प्रिये, स्वीकार होगा हृदय का उपहार मेरा।
प्रणय-भिक्षा माँगता हूँ, आज मैं निर्धन, धनी तू।
आज ही मैं कवि बना मेरी सरस-कविता बनी तू॥
चाँद का घूँघट हटा क्या मुस्कराके बोल दोगी ?

एक युग का एक दिन है।

आसुओं के साथ ही तो मेघ रिमझिम बरसता है।
एक क्षण की मधुर झाँकी के लिये मन तरसता है।

उस तरह मेरे हृदय में वेदना जलती प्रखर-तर।
आज मेरी भू मलिन है, आज मेरा मन मलिन है॥
मेघ-रव वर्षण गगन पर इन्द्र-धनु सी छवि सुहाई।
कौन कह सकता अरे इस मधुर रिमझिम में जुदाई॥
प्रेम की भाषा न जब तक जान पाई थी कुशल था।
कौन जाने, यह, कि, वह रे, कौन सा जीवन सफल था।
प्राण की बाज़ी लगा दी तब कहीं पर प्यार पाया।
हाय धोखे में सुधा के, गरल पर अधिकार पाया।
पुरुष-नारी से बनी है सृष्टि ही प्रभु की निराली।
एक प्राणी के बिना रे, विश्व सूना, सृष्टि खाली।
आँसुओं की बाढ़ में अब एक आशा का पुलिन है।

श्री 'अञ्चल'

प्रेम ? आह इस मधुर शब्द में
कितनी जलन भरी है
इन पुरवैया सी स्मृतियों में
तप्त भस्म बिखरी है

प्यार किया कब मैंने किसको ?
स्वयं नहीं यह जाना
जलता रहा अनल सा
अपने में न उसे पहचाना

\+ + +

प्रेम ? एक अभिशाप-एक
चीत्कार भरा सपना है
मौन मौन इस पूत चिता में
तिल तिल कर तपना है

आह न छेड़ो तड़प रहा
मैं मृत्यु हीन मतवाला
भर भर फुफक धधक उठती
है मेरी अन्तर्ज्वाला।

श्री 'अज्ञेय'

जिह्वा ही पर नाम रहे तो
कोई उसकी टेर लगाले,
शब्दों ही में बँधे प्यार तो
उसे लेखनी भी कह डाले,
आँखों में यदि हृदय बसा तो
करे तूलिका उसका चित्रण-
वह क्या करे कि जिसका रग-रग
में हो आत्मदान का स्पन्दन ?
मेरे कण कण पर अंकित है प्रेयसि ! तेरी अनमिट छाप।
तेरा तो वरदान बन गया मुझे मूकता का अभिशाप ॥

विद्या वैभव गुण विशिष्ठता
भूषण हों मानव के,
जीव प्रेम के विना किन्तु ये
दूषण हैं दानव के ।

—पंत

★ कवि परिचय ★

सूरदास—महाकवि सूरदास का जन्म १५४६ संवत् में और मृत्यु १६२० संवत् के लगभग मानी जाती है। ये आगरा-मथुरा की सड़क पर स्थित रुनकता नामक ग्राम के निवासी थे और सारस्वत ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे। इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कथन है कि ये जन्मान्ध थे और कुछ का कहना है कि ये जन्मान्ध नहीं थे। जन्मान्ध न मानने वालों का कहना है कि यदि ये जन्मान्ध होते तो इन्होंने प्रकृति के विभिन्न रूपों का सजीव एवं वास्तविक वर्णन कैसे किया है, ऐसे वर्णन कोई अन्धा नहीं कर सकता।

अष्ट-छाप (महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपने पिता के, और अपने, शिष्यों में श्रेष्ठ आठ कवियों को अष्ट छाप की संज्ञा दी थी) के कवियों में सबसे श्रेष्ठ भक्तकवि सूरदास हैं। भगवान् के लीला-गायकों में वे अमर हैं।

ब्रजभाषा को परिष्कृत साहित्यिक रूप देने का श्रेय सूरदास को प्राप्त है। उनका सूरसागर भारतीय वाँगमय के अमर ग्रथों में है। वात्सल्य के वर्णन में सूरदास की समता करने वाला कवि विश्व-साहित्य में दुर्लभ है। कृष्ण के इस भक्त-सखा कवि ने अपने प्रेम-पगे-प्राणों का अमृत-रस अपने

पदों में उडेल कर रख दिया है। सूर सचमुच भारतीय काव्याकाश के सूर्य हैं-'सूर सूर तुलसी शशी उडुगन केशवदास'। उनकी तीव्र अनुभूति के रस में डूबे हुए मार्मिक वर्णन पाठक या श्रोता के मनःप्राण को अभिभूत कर लेते हैं। मिश्र बन्धुओं ने सूरदास को हिन्दी साहित्य के नव रत्नों में दूसरा स्थान दिया है।

रचनाएं—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी।

तुलसीदास—गोस्वामी तुलसीदास का जन्म काल पं० रामगुलाम द्विवेदी के कथनानुसार सं० १५८९ है। गोस्वामी जी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी देवी था। ये बांदा जिले में राजापुर ग्राम के निवासी थे। गोस्वामी जी अभुक्तमूल में उत्पन्न हुए थे। ये जन्म-काल में पाँच वर्षों के बालक के समान थे और इनके पूर्ण दाँत भी थे। जन्म काल में ये रोये नहीं थे और इनके मुँह से केवल 'राम' शब्द निकला था। इन लक्षणों को अशुभ समझ कर पिता ने बालक की ओर से उदासीनता दिखाई, परन्तु माता ने उद्विग्न होकर उसे अपनी एक दासी मुनिया-को पालन पोषण के लिए दे दिया। पाँच वर्ष के बाद जब मुनिया भी मर गयी तब बालक के पिता के पास संवाद भेजा गया, परन्तु उन्होंने बालक को ग्रहण करना स्वीकार न किया। कुछ दिनों तक किसी प्रकार बालक का निर्वाह हुआ। अन्तमें बाबा नरहरिदास ने बालक को अपने पास रखा और उसे शिक्षा-दीक्षा दी। गुरुजी गोस्वामी जी को राम कथा सुनाया करते थे।

गोस्वामी जी बाबा नरहरिदास के साथ काशी पहुँचे। वहाँ इन्होने परम् विद्वान शेष सनातन जी से वेद, वेदाङ्ग और दर्शन आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। वहाँ से लौटकर गोस्वामी जी राजापुर आये और रत्नावली के साथ इनका विवाह हुआ और ये गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लगे। जनश्रुति है कि गोस्वामी जी अपनी स्त्री में अधिक अनुरक्त थे। परन्तु स्त्री की फटकार से इनका मन संसार से बिरक्त होगया और ये राम-भक्ति में लीन होगये। गोस्वामी जी ने संन्यासी के रूप में काशी, चित्रकूट, अयोध्या आदि तीर्थ स्थानों में भ्रमण किया सं० १६३१ में इन्होने अयोध्या में रामचरित मानस का श्री गणेश किया और उसे दो वर्ष सात मास में समाप्त किया।

सं० १६८० में काशी के अस्सी घाट पर गोस्वामी जी का परलोकवास हुआ। गोस्वामी जी की मृत्यु के सम्बन्ध में लोग यह दोहा कहा करते हैं,

'संवत् सोलह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥'

गोस्वामी जी हिन्दी-काव्य-संसार में सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। मिश्र बन्धुओं ने इन्हें हिन्दी साहित्य के नव रत्नों में प्रथम स्थान दिया है। उच्च कोटि के भक्त होने के साथ ही उनमें गंभीर पाडित्य और अपूर्व काव्य प्रतिभा थी। लोक-मंगल के प्रति वे अत्यन्त जागरुक थे। राम चरित मानस उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। हिन्दी भाषियों में पिछली तीन शताब्दियों से तुलसी की यह रामायण पूज्य और वंदित है। तुलसीदास की अधिकतर रचनाऐं अवधी में हैं। उनकी विनय पत्रिका में भाषा की जो शक्तिमत्ता प्रकट हुई है वह अतुलनीय है।

काव्यकला के वे श्रेष्ठतम आचार्य थे। भाषा उनकी चेरी थी। प्रसङ्ग के अनुरूप वह उनके इंगित पर नृत्य करती थी। 'श्री कृष्ण गीतावली' को उन्होने ऐसी ब्रजभाषा में लिखा है कि उसके माधुर्य और पदलालित्य की तुलना उनकी अवधी की ही रचनाओं से कीजा सकती है। उत्तर भारतीय लोक जीवन को तुलसीदास की रचनाओं ने अत्यन्त व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

रचनाऐं—रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली गीतावली, कृष्ण-गीतावली, दोहावली, सतसई, बरवै-रामायण, जानकी-मंगल, पार्वती-मङ्गल आदि। इन महाकवि की इन सभी रचनाओं के उत्कृष्ठ अंशों के रसास्वाद के लिये लेखक का 'तुलसी-सुधा-सार' पढ़िये जिसका दूसरा संस्करण सूर्य विकासी प्रकाशन द्वारा प्रस्तुत है।

रसखान—रसखान जाति के मुसलमान पठान थे। पहले किसी स्त्री के प्रेम में बुरी तरह पड़े हुए थे। सहसा परिवर्तन हुआ और वे कृष्ण-भक्ति की ओर आकर्षित हुए। उनकी लौकिक आसक्ति अलौकिक प्रेम में बदल गयी। बृन्दावन पहुँच कर महा प्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी बिट्ठलाचार्य से दीक्षा ली और वैष्णव हो गये। इनका काल संवत् १६१५ से सम्वत् १६८५ तक माना जाता है। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में इनका वर्णन आया है।

ये श्री कृष्ण के परम भक्त थे। रसखान की भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। इनकी रचनाऐं प्रेमियों के हृदय को स्पर्श करने वाली हैं और उनमें सरसता और आह्लादकता भरी रहती

है। रसखान की रचनाओं में सरलता और विशेष आकर्षण रहता है। उन्हें पढ़कर हृदय द्रावित हो जाता है। वस्तुतः उनकी रचनाऐं प्रेम-रससिक्त हृदय की सरस अनुभूतियाँ हैं।

रसखान की रचनाओं में शुद्ध ब्रज भाषा का प्रचलन तथा स्वच्छता है। अन्य कृष्ण भक्तों के समान इन्होंने 'गीत' काव्य का सहारा न लेकर कवित्त-सवैयों में अपने सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति की है। व्याकरण की दृष्टि से भी इनकी भाषा परिमार्जित एवं संयत है। रसों तथा अलंकारों का भी उसमें यथा स्थान समावेश है।

रचनाऐं—राग रत्नाकर, सुजान रसखान (कवित्त-सवैयों में) और प्रेम-वाटिका (दोहों में)।

केशवदास—यह सनाढ्य ब्राह्मण काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६१२ में और मृत्यु १६७४ के आस-पास हुई। ओरछा दरबार में इनका बड़ा मान था। इनका परिवार पांडित्य के लिये प्रसिद्ध था। यह अपने समय के प्रधान साहित्यशास्त्रज्ञ कवि माने गये। यह संस्कृत के पंडित थे और शास्त्रीय-पद्धति का भाषा में प्रचार किया। अलंकार विषय का इन्होंने व्यापक एवं विशद वर्णन किया है। भाषा तथा छंदों के ऊपर इनका चमत्कारी अधिकार था।

रचनायें—कवि-प्रिया, रसिक-प्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंह-चरित्र, विज्ञान-गीता, रतन बावनी और जहाँगीर-रस-चंद्रिका।

आलम-शेख—आलम पहले ब्राह्मण थे परन्तु शेख नाम की रंगरेजिन के प्रेम में फँसकर मुसलमान हो गये और उससे विवाह कर लिया। दोनों कविता करने में प्रवीण थे। इनकी

संयुक्त कृति 'आलम-केलि' कविताओं का संग्रह है। अठारहवीं ईस्वी सदी इनका समय माना जाता है। औरंगजेब के शाहजादा मुअज्जम इनके आश्रय दाता और प्रशंसक थे।

इस दम्पति के प्रेम की कहानी बड़ी रोचक है। कहा जाता है कि पंडित जी ने (बाद के आलम ने) एक बार शेख को अपनी पगड़ी रंगने को दी, जिसकी खूँट में भूल से काग़ज का एक चिट बँधा चला गया था। उस टुकड़े को जब शेख ने खोल कर देखा तो उसमें—"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन"—लिखा हुआ था। शेख ने दोहे को इस प्रकार पूरा कर उस टुकड़े को, पगड़ी वापिस करते समय, फिर खूँट में बाँध दिया—कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन—। पगड़ी के संग अपने दोहे की इस चमत्कृत पूर्ति को देखकर पंडित जी शेख पर लट्टू हो गये और उसे ही अपना दीन-इमान बना लिया।

पद्माकर—यह रीति-कला के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं। यह तैलंग ब्राह्मण थे और इनका जन्म सं० १८१० में बाँदे में हुआ। इनके पिता जयपुर के 'कविराज-शिरोमणि' थे। पद्माकर का १८९० सं० में देहावसान कहा जाता है।

यह देश भर में प्रसिद्ध थे। बाँदा के नवाब के यहाँ से जाकर यह अवध के बादशाह की सेना में बड़े अधिकारी हुए। फिर सितारे के प्रसिद्ध 'राघोबा' के दरबार में गये और सम्मान प्राप्त किया। अन्त में फिर जयपुर गये और महाराज जगतसिंह का आश्रय स्वीकार किया। अनुप्रास इनकी रचनाओं का सबसे बड़ा गुण है। 'जगद्विनोद' इनका सबसे बड़ा ग्रन्थ है।

दास (भिखारीदास)—दास जी का जन्म प्रतापगढ़ (अवध) के पास के ट्योंगा गाँव में कृपालदास जी के यहाँ हुआ था। रायनरोत्तदास आपके वृद्ध प्रपितामह थे। आप श्रीवास्तव कायस्थ थे।

'काव्य निर्णय' में दास जी ने प्रतापगढ़ के सोमबंशी राजा पृथ्वीसिंह के भाई बाबू-हिंन्दूपतिसिंह को अपना आश्रयदाता लिखा है। राजा पृथ्वीपतिसिंह सं० १७६१ में गद्दी पर बैठे थे और १८०७ में दिल्ली के वजीर सफदरजंग द्वारा छल से मारे गये थे। ऐसा अनुमान है कि १८०७ के बाद इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। इनका कविता-काल सं० १७८५ से लेकर सं० १८०७ तक माना जा सकता है।

काव्यांगों के निरुपण में दास जी को सर्व प्रथम स्थान दिया जाता है क्योंकि इन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति गुण, दोष, शब्द-शक्ति आदि सब विषयों का औरों से विस्तृत प्रतिपादन किया है। इनकी विषय-प्रतिपादन शैली उत्तम है और आलोचना शक्ति भी इनमें कुछ पाई जाती है। हिंदी काव्यक्षेत्र में इन्हें परकीया के प्रेम की प्रचुरता दिखाई पड़ी जो रस की दृष्टि से रसाभास के अन्तर्गत आती है। बहुत से स्थानों पर तो राधा-कृष्ण का नाम आने से देव काव्य का आरोप हो जाता है और दोष का कुछ परिहार हो जाता है। पर सर्वत्र ऐसा नहीं होता। इससे दास जी ने स्वकीया का लक्षण ही कुछ अधिक व्यापक करना चाहा और कहा—

श्री मानन के भौन में योग्य भामिनी और।
तिनहूँ को सुकियाहि में गनैं सुकवि-सिरमौर॥

दास जी ने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का व्यवहार किया है। शृङ्गार ही उस समय मुख्य विषय था। 'रस सारांश'

में इन्होंने नाइन, नटिन, धोबिन, कुम्हारिन, बरइन, सब प्रकार की दूतियों का अच्छी तरह वर्णन किया है। इनका श्रृङ्गार-निर्णय अपने ढंग का अनूठा काव्य है। उदाहरण मनोहर और सरस हैं। भाषा में शब्दाडंबर नहीं है। न ये शब्द चमत्कार पर टूटे हैं, न दूर की सूझ के लिए व्याकुल हुए हैं। इनकी रचना कलापक्ष में संयत और भावपक्ष में रंजनकारिणी है। विशुद्ध काव्य के अतिरिक्त इन्होंने नीति की सूक्तियाँ भी बहुत सी कही हैं जिसमें उक्ति-वैचित्र्य अपेक्षित होता है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि दास जी ऊँचे दरजे के कवि थे।

रचनाएं—रस सारांश, छंदोरावि-पिंगल, काव्य-निर्णय, श्रृङ्गार निर्णय, नामप्रकाश, विष्णुपुराण भाषा, छंद प्रकाश, शतरंज शतिका, अमर प्रकाश आदि आदि।

मतिराम—मतिराम जी का जन्म सम्वत् १६७४ के लगभग तिकवाँपुर (जिला कानपुर) में हुआ था। ये बूँदी के के महाराव भावसिंह के यहाँ बहुत काल तक रहे। इन्होंने 'छंदसार' नामक पिंगल का ग्रंथ महाराज शंभुनाथ सोलंकी को समर्पित किया।

इनकी भाषा सरस है। इनके काव्यों में भाषा तथा भाव स्वाभाविक है। कृत्रिमता का कहीं नाम नहीं है। भाषा शब्दाडंबर से सर्वथा मुक्त है। मतिराम की रसस्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा, रीति का अनुसरण करने वालों में, बहुत ही कम मिलता है।

'रसराज' और 'ललितललाम' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि रस और अलंकार की परीक्षा में ये अनुपम ग्रंथ है। रीति-काल के प्रतिनिधि कवियों में पद्माकर के बाद चलती भाषा और सरस व्यंजन में मतिराम ही का नाम आता है।

रचनाएं—रसराज, ललितललाम, 'छंद सार' नामक पिंगल, लक्षण-शृङ्गार, मतिराम-सतसई, साहित्यसार आदि।

देव—आपका पूरा नाम देवदत्त था। आपका जन्म अनुमानतः इटावा में सम्वत् १७३० निश्चित किया गया है। आप सानाढ्य ब्राह्मण थे। कुछ लोग आपको कान्यकुब्ज बताते हैं। आपको कोई एक आश्रयदाता न मिला। 'अष्टयाम' और 'भाव विलास' ग्रन्थों को औरङ्गजेब के बड़े पुत्र आजमशाह को सुनाया था। इसके पीछे भवानीदत्त वैश्य के नाम पर "भवानी विलास" और कुशलसिंह के नाम पर 'कुशल विलास' की रचना की। फिर मर्दनसिंह के पुत्र राजा उद्योतसिंह बैस के लिए 'प्रेम चंद्रिका' बनाई। इसके बाद आप कई स्थानों पर गये और इस बीच में 'जाति बिलास' नामक ग्रंथ लिखा। इसमें भिन्न भिन्न स्थानों की स्त्रियों का वर्णन है। इतने पर्यटन के बाद इन्हें एक अच्छे आश्रयदाता राजा भोगीलाल मिले जिनके नाम पर सम्वत् १७८३ में इन्होंने 'रसविलास' नामक ग्रंथ बनाया। इन राजा की आपने तारीफ करते करते निम्न बात तक कहदी हैं-'भोगीलाल भूपलाख, पाखर लेवैया जिन्ह, लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं।" इनके रचे ग्रंथों की संख्या ७२ तक कही जाती है, परन्तु उनमें केवल ये पच्चीस उपलब्ध हैं। भाव विलास, अष्टयाम, भवानी-विलास, सुजान-

विनोद, प्रेमतरङ्ग, राग-रत्नाकर, कुशल-विलास, देव चरित्र, प्रेमचंद्रिका, जाति-विलास, रस-विलास, काव्य-रसायन, सुख-सागर-तरङ्ग, वृत्त-विलास, पावस-विलास, ब्रह्म-दर्शन पचीसी, तत्वदर्शन-पचीसी आत्मदशन-पचीसी, जगदर्शन-पचीसी, रसानन्द-लहरी, प्रेम-दीपिका, सुमिल-बिनोद, राधिका-विलास, नीति शतक और नखशिख-प्रेमदर्शन।

बिहारी—यह माथुर चौबे थे। इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुवा गोविंदपुर गाँव में सं० १६६० के लगभग हुआ कहा जाता है। अनुमानतः यह सं० १७२० तक जीवित रहे। यह जयपुर के महाराजा जयसिंह के दरबार में रहा करते थे। इनका ग्रंथ बिहारी-सतसई जितना प्रचलित हुआ उतना, 'रामचरितमानस' को छोड़कर हिंदी में अन्य कोई ग्रंथ नहीं हुआ। इस एक छोटी सी रचना पर ही बिहारी का बड़ा नाम और यश है।

भारतेन्दु—भारतेन्दु का जन्म काशी के एक संपन्न वैश्य कुल में सं०१९०७ में हुआ और तैंतीस वर्ष की अल्प आयु में ही उनका शरीरांत होगया। परन्तु इस छोटे से जीवन में इन्होंने बहुत बड़ा कर्य किया। यह हिंदी के आधुनिक काल के प्रवर्त्तक एवं प्रतिनिधि थे। नियमित गद्य के जन्मदाता तथा पद्य में अर्वाचीन आदर्श एवम् शैली के चलाने वाले माने जाते हैं। इनका समस्त जीवन ही काव्य था। इनकी कला प्रियता तथा उदारता अभूतपूर्व थी। प्रतिभा का तो कहना ही

क्या। भारतेन्दु सच्चे युग प्रवर्त्तक थे। कविता, कहानी, नाटक, इतिहास सभी प्रकार की उत्कृष्ट रचनायें कीं। काव्य में शृङ्गार, सौंदर्य, विरह, प्रकृति, भक्ति, देश-प्रेम, समाज-सुधार आदि अनेक विषयों का समावेश किया।

प्रमुख रचनाएं—सत्य हरिश्चन्द्र, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, मुद्राराक्षस, अन्धेर नगरी, सती प्रताप, विषस्यविषमौषधम्, प्रेम-फुलवारी, भारतेन्दु-सुधा, काश्मीर-कुसुम तथा बादशाह-दर्पण हैं।

मैथिली शरण गुप्त—गुप्त जी का जन्म सं० १९४३ में झांसी के चिर गाँव कस्बे में हुआ। आधुनिक कवियों में सबसे अधिक लोक-प्रिय हैं। इन्हें राष्ट्रीय-कवि कहा जाता है। इनकी 'भारत-भारती' ने हिन्दी-भाषा-भाषियों में नव जीवन का संचार किया। इन्होंने खड़ी बोली की कविता को सुन्दर रूप दिया।

रचनाएं—भारत-भारती, साकेत, यशोधरा, जयद्रथवध पंचवटी, द्वापर, नहुष, सिद्धराज आदि।

सुमित्रानन्दन पंत—आपने अल्मोड़ा के कौसानी नामक ग्राम में सं० १९५८ में जन्म लिया। आप उच्च शिक्षा के लिए प्रयाग आये और अभी महाविद्यालय में ही थे कि राष्ट्रीय आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया, जिसमें यह भावुक प्राणी खिच आया। सं० १९७५ से यह काव्य रचना कर रहे हैं। कहना न होगा कि छायावाद अथवा हृदयवाद के यह

प्रधान आचार्य हैं। इनका भाव गहरा और भाषा क्लिष्ट है। फिर भी नवयुवकों में इनका बड़ा मान है और इनकी कविता का सबसे अधिक प्रचार है। प्रयाग में ही निवास करते हैं।

रचनाएं—पल्लव, वीणा, गुञ्जन, उछ्वास, ग्रंथि आदि भाव तक की कविताओं के संग्रह हैं।

महादेवी वर्मा—आपका जन्म सं० १९६६ में फरुखाबाद में हुआ। एम० ए० तक की शिक्षा प्रयाग में हुई। कुछ समय तक चाँद पत्रिका का संपादन करती रहीं और इधर अनेक वर्षों से प्रयाग महिला विद्यालय की लेडी-प्रिंसिपल हैं।

आधुनिक हिंदी काव्य में आपने बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। आप हृदयवादी कवियों में सबसे अधिक लोक प्रिय हैं। युवक समुदाय तो आप को बहुत ही चाहता है। आप की प्रतिभा जैसी मौलिक है वैसी ही गहरी भी है। अनन्त के अज्ञात प्रियतम के लिये वेदना ही इनके हृदय का भाव है। वेदना से इन्होंने स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है और उसी में घुली-मिली रहना चाहती हैं। "मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चूर हूँ"। इनकी अनुभूतियाँ लोकोत्तर हैं। ऐसा लगता है कि इनकी रचनायें देशांतर में भी ऊँचा स्थान ग्रहण करेंगी।

इनकी अब तक की रचनायें हैं नीहार, रश्मि, नीरजा, और सांध्यगीत। ये सभी एक ग्रंथ यामा में भी आकर्षक रूप में प्रकाशित हुई हैं। गीत लिखने में यह अप्रतिम मानी जाती हैं।

शृंखला की कड़ियाँ और अतीत के चल-चित्र आप के दो गद्य ग्रंथ भी है। हिन्दी जगत् को श्रीमती महादेवी वर्मा का गर्व है।

गोपाल शरण सिंह—ठाकुर गोपाल शरण सिंह का जन्म सं० १९४२ में रीवाँ में एक बड़े जागीरदार घराने में हुआ। आप नियमित रूप से केवल हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की, परन्तु स्वाध्याय तथा साहित्यिक हृदय ने आप को बहुत ऊँचे स्थान तक पहुँचा दिया है। खड़ी बोली का माध्यम और प्रसाद गुण ठाकुर साहब की विशेषतायें हैं। प्राचीन एवम् अर्वाचीन दोनो प्रकार के भावों को व्यक्त करने में आप का समान कौशल है।

माधवी, कादंबिनी, मानवी और संचिता ठाकुर साहब की अब तक की रचानयें हैं। अभी औरों की भी आशायें हैं।

हरि औध—कवि-सम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म आजमगढ़ के निजामाबाद ग्राम में सं० १९२२ में हुआ। हिन्दी मिडिल पास करने के बाद कुछ दिनों तक काशी के क्वींस कॉलेज में अङ्गरेजी का अध्ययन करने लगे अस्वस्थता के कारण शीघ्र घर वापिस आना पड़ा। अच्छे होने पर एक मिडिल स्कूल में अध्यापक हुए, फिर गिरदावर कानूनगो होकर, सं० १९८० में अवकाश प्राप्त किया। तदनन्तर काशी विश्व विद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर का कार्य करने लगे। सं० २००५ में इनका देहान्त होगया।

इनका 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली का पहला महाकाव्य था जिससे खड़ी बोली को बड़ी प्रतिष्ठा मिली। यह ब्रजभाषा में भी उसी कौशल से कविता लिखते थे जिससे खड़ी बोली में। 'रसकलश' ब्रजभाषा में ही एक महान रीति ग्रंथ हैं। इनकी अन्य रचनायें हैं पद्यप्रसून, वैदेहीवनवास, चोखे चौपदे,

चुभते चौपदे, बोलचाल, पारिजात, पद्यप्रमोद, प्रेम-पुष्पोहार प्रेमांबुप्रवाह, ठेट हिन्दी का ठाट, अधखिला फूल (अन्तिम दोनों गद्य)। इनके अतिरिक्त इनके किये हुए दो संग्रह भी हैं। सरस-संग्रह और कबीर वचनावली।

भाषा और भाव दोनों पर हरिऔध जी का विचित्र अधिकार था। आधुनिक हिन्दी साहित्य के यह एक बड़े स्तंभ थे।

'रत्नाकर'—जगन्नाथ दास रत्नाकर का जन्म काशी में सं० १९२३ में और देहान्त हरिद्वार में सं० १९९९ में हुआ। ब्रजभाषा की पुरानी शैली के कवियों में रत्नाकर जी का स्थान सबसे ऊँचा कहना चाहिए। ग्रेजुएट होने के बाद दो वर्षों तक अवागढ़ दरबार में और बाद को अयोध्या के राज दरबार में आजीवन सचिव का कार्य करते रहे।

रत्नाकर जी महाकवि थे। कृष्ण की बाँसुरी, गोपियों का विरह और ऊधो का निर्गुण संदेश एक बार फिर इनकी सरस रचनाओं में सजीव हो उठे। यह इनकी विशेषता थी कि उन पुराने विषयों पर इनकी भी मौलिक भावभंगी है जिनपर पहले अनेक महाकवि यश प्राप्त कर चुके थे। प्राचीन-विषय-रसों को इन्होंने, विचित्र रूप से, नवीन कल्पनाओं द्वारा व्यक्त किया है। इनका उद्धवशतक इन के युग का ब्रजभाषा में सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ कहा जाना चाहिए।

उद्धवशतक के अतिरिक्त गङ्गावतरण, हरिश्चन्द्र, कल-काशी, विहारी सतसई की रत्नाकरी टीका इनकी विशिष्ट रचनायें हैं।

श्याम नारायण पांडेय——जन्म आजमगढ़ के डुमरावपुर में सं० १९६७ में हुआ। अपने पिता पं० रामाज्ञा पांडेय की तरह आप भी संस्कृत के एक प्रगाढ़ पंडित हैं। इस समय काशी के माधव संस्कृत विद्यालय में प्रधानाध्यपक हैं। पांडेय जी वीररस के प्रख्यात कवि हैं। हल्दी घाटी, जौहर, कुमार संभव, रिम झिम, आंसू के कण, त्रेता के दो वीर तथा माधव आप की अब तक की रचनायें हैं। आपकी परिष्कृत एवं ओजस्वी शैली से हिन्दी की अधिकाधिक श्री वृद्धि होने की आशा है!

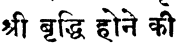

अनूप——वर्त्तमान भूषण अनूप शर्मा का जन्म सीतापुर के प्रसिद्ध कसबे नवी नगर में सं० १९५५ में हुआ। लखनऊ में शिक्षा पाने के उपरान्त आप इधर उत्तर प्रदेश और बीच में पुराने मध्यभारत के हाई स्कूलों में प्रधानाध्यापक का कार्य करते रहे हैं। आप एम०ए०एल०टी हैं और ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों पर अपूर्व अधिकार रखते हैं। कुणाल खण्ड काव्य, सिद्धार्थ खड़ी बोली का महाकाव्य और फेरि मिलिवो ब्रजभाषा का काव्य ग्रंथ है। कुसुमांजलि नाम से स्फुटकविताओं का संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। इन दिनों लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र के देहाती कार्यक्रम में नियमित रूप से सम्मिलित होते हैं।

अनूपजी पांडित्य पूर्ण कवि हैं। सभी रसों की उत्तम रचना करते हैं और भावो की गहराई और कल्पनाओं की उड़ान में सच्चे महाकवि हैं। हिन्दी के कवियों में अनूप जी महाकवि के ऊँचे आसन पर सदा आसीन रहेंगे।

निराला—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म सं० १९५५ में मेदिनीपुर (बंगाल) जिले के महिषादल राज्य में हुआ था। इनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के निवासी थे। निरालाजी बङ्गाल में बहुत दिनों तक रहे और अङ्गरेज़ी-संस्कृत के साथ बङ्गला का भी पूरा अध्ययन किया। समन्वय और मतवाला पत्रों का सम्पादन कर चुके हैं और छायावाद मिश्रित रहस्यवाद की कविता के लिए हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध हैं। निराला जी गभीर समालोचक भी है। रवीन्द्र कविता-कानन आपकी प्रख्यात पुस्तक है। इधर वर्षों से प्रयाग में रहते हैं।

अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास [काव्य और अप्सरा, प्रभावती निरुपमा इनकी मौलिक गद्य रचनायें हैं।

'बच्चन'—श्री हरवंशराय का उपनाम 'बच्चन' है और इसी नाम से यह हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध हैं। नवयुवकों में जितनी लोक-प्रियता इनकी है उतनी किसी की भी नहीं।

यह झांसी जिले के निवासी और प्रयाग विश्वविद्यालय में अँगरेज़ी के प्रोफेसर थे और इसी वर्ष आप भारत सरकार के परराष्ट्र सचिवालय में विशेष अधिकारी के पद पर नियुक्त हुए हैं अभी हाल में लंदन से, एक अध्ययनपूर्ण निबंध पर, डोक्टरेट प्राप्त कर यहाँ वापिस आये हैं। यह उनकी प्रतिभा की विशेषता है कि अँगरेजी के उच्च अध्ययन अध्यापन के संग-संग हिन्दी की भी अतुल सेवा करते जा रहे हैं।

आरंभ में बच्चन ने फारसी कवि उमरखय्याम की प्रसिद्ध कविताओं का हिन्दी में सुन्दर रूपान्तर किया, जिसका पाठकों में बड़ा आदर हुआ। उससे उत्साहित होकर आपने मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, तेरा हार, निशा निमंत्रण संग्रहों के नाम से मौलिक गीतों की रचना की जिनके द्वारा हिन्दी में एक नई धारा प्रवाहित हुई, जिसको 'हालावाद' न कहकर हृदयवाद के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावाद कहना अधिक ठीक होगा। बच्चन के कविता-पाठ की सुमधुर शैली ने उन्हें और भी लोकप्रियता दी है। प्रेम इनका प्रधान विषय है। परन्तु विरह-जनित नैराश्य से अभिभूत दिखाई देते हैं। दलित और पीड़ित वर्गों के लिये इनकी विशेष सहानुभूति है। 'बंगाल के अकाल' में सामाजिक रूप देखा जाता है। इनकी भाषा साफसुथरी प्रसाद गुणयुक्त है। बच्चन जी एक लम्बे मौन के पश्चात् प्रकाशन के क्षेत्र में फिर उतरे हैं। 'प्रणय-पत्रिका' आपकी एक हाल की अनूठी पुस्तक है। कविताओं में जीवन की पकड़ कहीं अधिक गहरी हो गई है और उनकी लेखनी में मानव-हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्य को उद्घटित करने की अद्भुत क्षमता आगई है। हिन्दी को इनसे बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

'अंचल'—श्री रामेश्वर शुक्ल का उपनाम 'अंचल' हैं। यह हिन्दी-काव्य के क्रांतिदूत माने जाते हैं। जैसा आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है, अंचल अभी मार्ग में हैं। इनकी भाव-भाषा दोनों में मांसलता है। इनमें एक विशेष प्रकार का ओज और तेज है जो कम छायावादियों में मिलता है। इनकी रचना के प्रधान विषय हैं तृष्णा, आशा, लालसा, प्रेम, रूप और संघर्ष। संघर्ष के तो यह अग्रदूत ही कहे जा सकते हैं।

'अज्ञेय'—श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय नाम से कविता करते हैं। प्रगतिशील कवियों में इनका विशेष स्थान है। वास्तविकतावाद इनकी शैली का सबसे बड़ा लक्षण है। इनकी गतिविधि परम स्वतंत्र है। इनकी गहरी भावुकता प्रशंसनीय है। इनके मार्ग और ध्येय अभी निश्चित नहीं कहे जा सकते हैं। इसलिये कुछ लोग इन्हें प्रयोगवादी कवि कहते हैं। 'विश्व-प्रिया' तथा 'एकायन' इनकी दो प्रसिद्ध रचनायें हैं, जिनका विषय प्रेम है।

भगवतीप्रसाद बाजपेयी—एक सफल कहानी लेखक और मर्मस्पर्शी कवि दोनों हैं। नमूने में दी गई 'पनघट पर' कविता कवि के प्रेमार्द्र हृदय का परिचय देती है। मँजी भाषा और निखरा हुआ भाव बाजपेयी जी की विशेषता है। आशा है आपके द्वारा हिन्दी का कोष अधिकाधिक भरा जायगा।

बालकृष्ण राव—आप लीडर पत्र के स्वर्गीय यशस्वी संपादक डा० सी. वाई. चिंतामणि के सुयोग्य पुत्र हैं और अपनी प्रखरता द्वारा आई० सी० एस० में प्रविष्ट हो गये हैं। अँगरेजी के ऊपर तो आपका अधिकार है ही, हिंदी के भी प्रख्यात कवि हैं। केंद्रीय सचिवालय में एक ऊँचे पद पर रहते हुए भी हिंदी काव्य से आपका अनवरत प्रेम बना हुआ है। हृदयवादी कवियों में आपका ऊँचा स्थान है।